

**Text Dark And Light
Within The Book Only**

TEXT PROBLEM

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182372

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/C47/Ka Accession No. G.H.63

Author - d. 2141 2111 1. att 71 4571

Title - 4416 4071 T / 1117

This book should be returned on or before the date
last marked below.

कमाल-कुण्डला

पहला खण्ड

पहला परिच्छेद

सागर-सङ्गम में

"Floating straight obedient to the stream"

-Comedy of Errors.

ढाई-सौ साल पहले एक दिन माय-महीन की गत समाप्त होते-
गते यात्रियों की एक नाव गङ्गासागर में लौट रही थी। पोत गीत
और दूसरे जलदम्युओं के डर से यात्रियों की नावों का संगठित
रूप से आना-जाना ही उस समय की प्रथा थी। परन्तु इस नाव
के आगेही अकेले थे। इसका कारण यह है कि गत बोलते-बोलते
बोर कुहरा चारों ओर छा गया था; नारिक दिशः का निरूपण न
कर पाने की वजह गोल में छुटकर दूर निकल गये थे। अब किम
तरफ कहाँ जा रहे हैं, इसका कोई निश्चय नहीं था। नाव के अधि-
कांश आगेही मो रहे थे। मिरा एक प्राचीन और एक युवा, ये
दो आदमी, जग रहे थे। प्राचीन जन युवा के साथ बातचीत कर
रहे थे। एक दूरा बातचीत बन्द कर वृद्ध ने नारिकों में पूछा,
“माभी, आज कितनी दूर जा सकोगे?” माभी कुछ इधर-उधर
करके बोला, “बता नहीं सका।”

वृद्ध नागज होकर माभी का खरी-खोटी सुनाने लगे। युवक ने कहा, “महाशय, जो ईश्वर के हाथ में है, उसे परिणत भी नहीं बता सकते—वह मूर्ख किस तरह बतलायेगा? आप व्यस्त न हों।”

वृद्ध ने उग्र भाव से कहा—व्यस्त नहीं हूँगा? कहते क्या हों? वदमाश वीम-पचीम वीवे का धान काट ल गये, लड़के-बच्चे साल भर खायेंगे क्या?”

यह खबर गङ्गास्नान पहुँचने पर उन्हें पीछे से आनेवाले यात्रियों की जवान्नी मिली थी। युवा ने कहा, “मैंने पहले ही कहा था, महाशय के सकल में कोई दृमर अभिभावक नहीं—महाशय का अन्त अन्त नहीं हुआ।”

प्राचीन ने पहले की तरह उग्र भाव से कहा, “आऊँगा नहीं? तीन पन तीन गये, चौथे में पड़ा हूँ। परकाल के लिए अभी नहीं चेनूँगा तो कब चेनूँगा?”

युवा ने कहा, “अगर शास्त्र में समझा है, तो तीर्थ-दर्शन से परकाल का जैसा कर्म जाता है, वैसा यग वैठकर भी हो सकता है।”

वृद्ध ने कहा, “तो तुम क्यों आये?”

युवा ने जवाब दिया, “मैं तो पहले ही कह चुका हूँ, कि समुद्र देखने की वड़ी लालसा थी, इसी लिए आया हूँ।” वाद को और मुलायम स्वर से करने लगे, “अहा! क्या देखा! जन्म-जन्मान्ता से भी नहीं भट्टेगा!”

दृग्दयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनगजिनीला ।

आभर्ति वेला लवणास्वुराशेर्धागानिवद्धे व कलंकं गवा ॥”

वृद्ध के कान कविता की तरह नहीं थे। नाविक आपस में जा बातचीत कर रहे थे, उसे ही एकाग्रचित्त से सुन रहे थे।

एक नाविक दूसरे से कह रहा था, "ओ माई ! यह तो बड़ा बुरा काम हुआ । अब हम बाहर-दरिया में आ पड़े या किसी दूसरे देश में आये, कुछ समझ में नहीं आ रहा ।"

कहनेवाले का स्वर बहुत ही भय-उत्पाकूल था । वृद्ध ने समझा, कोई विपत्ति सामने है । शंकित चित्त ने पूछा, "मास्की, क्या हुआ है ?" मास्की ने जवाब नहीं दिया । परन्तु युवक उतर की प्रतीक्षा न कर बाहर आये । बाहर आकर देखा, प्रायः प्रभात हो आया है । चारों ओर गहरा कुहरा छाया हुआ है । आकाश, नक्षत्र, चन्द्र, उपकूल, किसी तरह कुछ नहीं दृश्य पड़ता । समझे, नाविकों को दिक्कत हुआ है । अब किस तरह जा रहे हैं; इसका निश्चय नहीं प्राप्त हो रहा । कई बाहर समुद्र में पड़कर अकूल से मारे जायँ, इस आशंका से डरे हुए हैं ।

आम वचाने के लिए सामने पर्व लगाने हुआ था, इसलिए नाव के भीतर से आगेही यह सब विषय नहीं मात्क्रम कर सका । परन्तु नवीन यात्री अवस्था मात्क्रम कर वृद्ध से सविशेष कहने लगे, तब नाव में बड़ा कालाहल मचा । जितनी बियाँ नाव में थी, उनमें कोई-कोई बातचीत की आवाज से जग गई; मुनने ही वे आर्तनाद कर उठीं । प्राचीन ने कहा, "किनारे चलो, किनारे चलो, किनारे चलो ।"

नवीन ने जरा मुस्कराकर कहा, "किनारे कहा है ? यह मात्क्रम होने पर इतनी विपत्ति क्यों होगी ?"

यह मुनकर नाव के आगेदिये का और भी कालाहल बढ़ा । किसी तरह उन लोगों को ठण्डा कर नवीन यात्री ने नाविकों से कहा, "आशंका की बात कुछ भी नहीं, सुबह हो गई है—चार-पाँच दण्ड में अवश्य सूर्योदय होगा । चार-पाँच दण्ड में नाव को कोई खतरा नहीं पहुँच सकता । तुम लोग इस समय डाँड़ चलाना बन्द

कंगे, वहान में नाव जहाँ चढ़े जाय; बाद के धूप निकलने पर सलह की जायगी।”

नाविक यह सलह में नकर तदनुरूप आचरण करने लगे।

बहुत देर तक नाविक निश्चेष्ट रहे। भय में यात्रियों के प्राण कमठ में आ गये। हवा का नामानिधान नहीं था। इसलिए वे तालों के झंकारे और कम्पन कुछ मालूम नहीं कर सके। फिर भी सब ने निश्चय किया कि मौत नजदीक है। मर्द चुपचाप स्वर्ग का नाम जपने लगे, स्त्रियाँ स्वर भरकर तरह तरह के शब्द-ध्याम से रंगने लगीं। एक स्त्री गङ्गासागर में समुद्र को अपना लड़का चढ़ा आती थी, लड़का पानी में छोड़कर फिर निकल नहीं सकी थी, सिर्फ वहीं नहीं रोती।

प्रतीक्षा करते करते अर्द्धरात्रि एक पहर दिन चढ़ आया। ऐसे समय अकस्मान्त नाविक दरिया के पोंचपीर का नाम लेकर महा-कोलाहल कर उठे। यात्रियों में सब के सब पृष्ठ उठे, “क्या है! क्या है! माभी, क्या हुआ?” माभी भी समस्वर में कोलाहल करने हुए कहने लगे, “धूप निकली है! धूप निकली है! किनारा! किनारा! किनारा!” यात्रियों में सभी उत्सुकता के साथ नाव के वादर आकर, कड़ा आये हैं, क्या माजरा है, देखने लगे। देखते-सूरज निकल आया है, कुंडर का ओधरा दिङ्मराडल में विलकुल विमुक्त हो गया है। दिन पहर भर में जयादा चढ़ आया है। जिस जगह नाव आर्ड है, वह सही-सही महामुद्र नहीं, नदी का मुहाना है, परन्तु वहाँ नदी का जैसा पाट है, वैसा और कहीं भी नहीं, नदी का एक किनारा नाव के बहुत निकट है, सही, यहाँ तक कि पचास हाथ के भीतर होगा, परन्तु दूसरे किनारे का कहीं निशान तक नहीं देख पड़ता। और जिस तरफ भी देखा जाता है, अनन्त जलराशि चञ्चल रवि-रश्मियों से प्रदीप्त होकर आकाश के प्रान्त

स आकाश से मिल रही है। पास का पानी प्रायः पंकिल, नदी के पानी की तरह का है। पशु दुग् की वगैरिणि नीलाभ है। आगेहियो ने यह सिद्धान्त किया कि वे महासमुद्र में आ पड़े हैं। लेकिन सौभाग्य थे कि किनारा पास है, शंका की बात नहीं। मृगज की तरफ देखते हुए दिशा का निरूपण किया। सामने जो उपकूल देख गये थे, वह समुद्र का पश्चिमी तट है, सडज सिद्धान्त हुआ। तट के बीच, नव के कुछ ही दूर, एक दूसरी नदी का मुँह मन्दगामी कलधौत प्रवाह की तरह आकर मिल रहा था। संगम स्थल के दहर्ना आगे बल्ट के एक बड़े भाग में टिटिहरी आदि अगणित चिड़ियाँ फीड़ा कर रही थीं। इस नदी का नाम अब 'गमूलपुर की नदी' पड़ा है।



दूसरा परिच्छेद

उपकूल में

'In gratitude ' Thou marble-hearted fiend ' "

—King Lear.

आरोहियों की उन्माहवाली बातें समाप्त होने पर नाविकों ने प्रस्ताव किया कि ज्वार आने की अभी कुछ देर है, इसी अवकाश में आरोही सामने की रेती पर भोजन पका लें; बाद के जलोच्छ्वास के आगम में ही स्वदेश की ओर यात्रा कर सकेंगे। नाविकों ने नाव किनारे बांधी। आरोही उतरे और स्नान आदि प्रातः-कृत्य करने को तैयार हुए।

स्नान के बाद पक के उद्योग में एक और नई विपत्ति सामने आई। नाव पर जलाने की लकड़ी नहीं थी। बाव के डब से ऊपर रेती से लकड़ी ले आने के कोई रास्ता नहीं हुआ। अन्त में सबके उपवास की तैयारी देखकर प्राचीन ने उक्त युवा को सम्बोधन करके कहा, "थेटा नवकुमार ! तुम इसका उपाय नहीं करोगे तो हम इतने आदमी मर जायेंगे।"

कुछ देर से-चकर नवकुमार ने कहा, "अच्छा मैं ही जाऊंगा; कुहाड़ी दो; और इसिया लेकर एक आदमी मेरे साथ आया।"

नवकुमार के साथ किसी ने जाना नहीं चाहा।

"भोजन के वक्त देखा जायगा" यह कहकर नवकुमार कमर बांधकर अकेले कुहाड़ी लेकर लकड़ी लेने चले।

तीर पर चढ़कर नवकुमार ने देखा, जितनी दूर निगाह जाती है, उतने में कहीं बस्ती के लक्षण नहीं देख पड़ते। केवल वन है। परन्तु वह बड़े पेड़ों से शोभित या निविड़ वन नहीं। केवल जगह-जगह छोटी-छोटी भाड़ियाँ मण्डलाकार किसी किसी भगवद् के घेरे हुए हैं। उनमें नवकुमार ने लेंने लायक लकड़ी नहीं देखी। इसलिए उपयुक्त वृक्ष की ग्वाज में नदी के किनारे से अधिक दूर जाना पड़ा। अन्त में काटने लायक एक पेड़ मिला। उसमें उन्होंने आवश्यकता-नुसार लकड़ी ली। लकड़ी ढाँक लाना एक और विपन्न काम मान्य किया। नवकुमार रागीर के लड़के नहीं थे, इन सब कामों का अभ्यास नहीं था, अच्छी तरह विचार किये बिना लकड़ी लेने गये थे। परन्तु अब लकड़ी का बोझ बड़ा कष्टकर मान्य करने लगा। जहाँ-तहाँ, जिस काम में लग गये हैं, उससे ज़रा से भी मुँह मोड़ना नवकुमार का स्वभाव नहीं था। कुछ दूर ढाँके थे, फिर कुछ देर बैठकर विश्राम करते थे, फिर ढाँके थे, इस तरह आने लगे।

इस कारण से नवकुमार के आने में देर होने लगी। डेढ़-साथी उनकी देर देखकर उद्विग्न होने लगे। उन्हें ऐसी आशंका हुई कि नवकुमार को रात्रि पकड़ ले गया है। लोटेने का कल्पित समय पास हो जाने पर उनके हृदय में ऐसी ही स्थिर मित्रता न हुआ। फिर भी किसी की ऐसी हिम्मत नहीं हुई कि किनारे चढ़कर कुछ दूर बढ़कर उनकी ग्वाज करे।

नाव के आरोही इस तरह की कल्पना कर रहे थे, इसी बीच जलगाशि में भैरव कलोल उठा। नाविक समझ गये कि ज्वार आ रहा है। नाविकों का अच्छी तरह मान्य था कि इन सब स्थानों में जलोच्छ्वास के समय किनारे पर नावों का ऐसा प्रचण्ड थपड़ा लगता है कि नाव किनारे रहने पर टुक-टुक हो जाती है। इसलिए जलवाजी में नाव के बन्धन खोलकर वे उसे नदी के बीच में लाने

लगे। नाव खुलते न खुलते ही, सामने की रेंती पानी में डूब गई। यात्रियों के व्रत भाव से नाव पर चढ़ने का अवकाश मिला था। आवल आदि जो कुछ ग्राह्य-सामग्री किनारे रखी गई थी, वह सब बह गई। दुर्भाग्य से नाविक बहुत निपुण नहीं थे, नाव को संभाल नहीं सके। जल के प्रबल प्रवाह से नाव रमूलपुर की नदी में होकर बह चली। एक आरोगी ने कहा, "नवकुमार जो रह गया?" एक नाविक ने कहा, "अरे, तमारे नवकुमार क्या और है? उन्हें म्याम चट गये हैं।"

पानी का वेग नौका के रमूलपुर की नदी के भीतर लिये जा रहा है, लौटाने में बड़ी दिक्कत होगी, इसलिए नाविक प्रणयण से उसके बाहर आने की कोशिश करने लगे। यद्यो तक कि उस भाव के महीने में भी उनके ललाट से पसीने की बूंदें टपकने लगीं। इस प्रकार के परिश्रम से रमूलपुर की नदी के भीतर से नाव बाहर तो आने लगी, परन्तु वह ज्यों ही बाहर आई कि वहां के और भी प्रबल स्रांत से उत्तरमुखी होकर तीर की तरह बह चली। नाविक इस पर जरा भी शोक नहीं लगा सके। नाव फिर नहीं लौटती।

जब पानी का वेग इस प्रकार मन्द हो आया कि नाव की गति संयत की जा सके, तब यात्री रमूलपुर का मुहाना पार कर बहुत दूर आ गये थे। अब नवकुमार के लिए लौटा जायगा या नहीं, इस विषय की सीमाएं आवश्यक हुईं। इस जगह कहना आवश्यक है कि नवकुमार के सहायात्री सिर्फ उनके पड़ोसी हैं, कोई उनके आत्मीय नहीं। उन लोगों ने विचार करके देखा कि वहां से लौटने के लिए एक और भएट चाहिए। फिर रात हो जायगी और रात को नाव का चलना नहीं हो सकेगा, इसलिए दूसरे दिन के उषा की प्रतीक्षा करनी होगी। इस समय तक सबका भूखा रहना होगा। दो दिनों तक बिना खाये सब के प्रणो की आ

वनेगी। स्वाम तौर से नाविक लौटने को असम्मत है। वे बात माननेवाले नहीं। वे कह रहे हैं कि नवकुमार को वाप पकड़ लिया गया है। ऐसा ही होगा। फिर इतनी तकलीफ क्यों उठाई जाय ?

इस तरह सोचकर नवकुमार के चित्त भी स्वदेश के दूत-यात्रियों ने उचित ठहराया। नवकुमार उस भीषण मनुष्य के कितने वनवास में विमर्जित हुए।

यह सुनकर अगार कोई प्रतिज्ञा कि कभी दूसरे के उपवास तोड़ने के डरते लकड़ी लेने नहीं जायेंगे, तो वे प्रामाण्य हैं, इन यात्रियों की ही तरह पारस है। अपना उपकार करने लगे के वन में छेड़ देना जिनकी प्रकृति है, वे सदा उपकार करनेवाले के वन-वास देंगे, परन्तु जितनी दूरे भी वनवास दें, दूसरे के लिए लकड़ी लाना जिसका स्वभाव है, वह फिर दूसरे के लिए लकड़ी लेने जायगा। तुम अवस हो, इसलिए मैं उन्नम क्यों नहीं दूंगा ?

तीसरा परिच्छेद

विजन में

“ Like a veil,

*Which if withdrawn, would but disclose the frown
Of one who hates us, so the night was shown
And grimly darken'd o'er their faces pale
And hopeless eyes ”*

— Don Juan

जिस जगह नवकुमार के छोड़कर यन्त्री चल गये, उसके थोड़ी ही दूर पर देवतपुर और दक्षिणपुर नाम के दो छोटे गांव इस समय रहे होते हैं। परन्तु जिस समय की वर्णन में हम लगे हुए हैं, उस समय वहाँ मनुष्य की वस्ती का कोई चिह्न नहीं था, केवल जङ्गल था। पर्वत वङ्गाल से अत्यन्त भूमि जैसी सहज उबरा है, इस प्रदेश में वैसी नहीं। स्मृतपुर के मुहाने से सुवर्णरेखा तक बिना बाधा के कई योजनायन्त्र व्याप्त का वायु के स्तूपों की एक श्रेणी बिगड़ रही है। अगर ये स्तूप कुछ और ऊँचे होते तो इन्हें वायु के छोटे-छोटे पर्वतों की श्रेणी कह सकते थे। इस समय लोग इसे ‘वाली-याड़ी’ कहते थे। वालीयाड़ी के इन सब धवल शिखरों की माला दुपहर की सूर्य-किरणों से दूर से अपूर्व-प्रभावशालिनी देख पड़ती है। इस पर ऊँचे पेड़ नहीं पेदा होते। स्तूप के नीचे माधारण छोटे-छोटे वन वनते हैं। परन्तु बीच में या शिरोभाग में प्रायः छायाहीन धवल शोभा बिगड़ती रहती है। नीचे बेरकर उगने-

वाले पेड़ों में सरपत, जङ्गली भाऊ और जङ्गली फूल ही अधिक हैं।

इस तरह की खुश न कर सकनेवाली जगह नवकुमार साथियों में छोड़े गये। पहले वे लकड़ी का भार लेकर नदी के किनारे आये, नाव नहीं देखी, तब अकस्मात् उन्हें बड़ा डर लगा, परन्तु साथी उन्हें विलकुल ही छोड़ गये हैं, ऐसा नहीं जान पड़ा। उन्होंने सोचा, अगर मेरेती डूब जाने के कारण वे पास की किसी दूसरी जगह नाव लगाये हुए हैं, जल्द ये उन्हें खोज लेंगे। इस आशा में कुछ देर तक वहाँ बैठे हुए प्रतीक्षा करते रहे। परन्तु नाव नहीं आई। आसानी भी कहीं नहीं देख पड़ा। नवकुमार भूख में बहुत व्याकुल हुए। और प्रतीक्षा नहीं कर सके। नाव की खोज में किनारे-किनारे घूमते रहे। कहीं भी नाव का पता नहीं लगा। लौटकर पड़ती जगह आये। तब तक नाव न देखकर उन्होंने सोचा, अगर का वेग नाव को बहा ले गया है। अब उल्टे स्रोत में आते हुए साथियों को खूद-खूद देर हो रही है। परन्तु अगर भी समान हुआ। तब उन्होंने सोचा, उल्टे स्रोत के अधिक वेग के कारण अगर में नाव नहीं लाट सकती, अब भाटे में अवश्य आती होगी। परन्तु क्रमशः भाटे का वेग भी बढ़ा, क्रमशः दिन ढल आया, सूर्य अस्त हो गया; अगर नाव लाटनेवाली होती तो अब तक लाट आती।

तब नवकुमार को विश्वास हुआ कि या तो जलान्ध्रता के कारण तरङ्गों के थपेड़े खाकर नाव पानी में डूब गई है या साथी उन्हें इस विजन में छोड़कर चले गये हैं।

पहाड़ के नीचे चलनेवाले आदमी पर शिखर-खण्ड टूट पड़ने पर जिस तरह उसे एक बार ही पीस डलता है, यह मिथ्या-त मन में आते ही नवकुमार का हृदय उसी तरह एक साथ दलमल गया।

इस समय नवकुमार के मन की अवस्था जैसी हुई, उसकी वर्णना असाध्य है। साथी डूबकर जान से राख धा चुके होंगे, ऐसे सन्देह से उन्हें परिताप तो हुआ, परन्तु अपनी विपत्तिवाली विना सहारे की अवस्था सोचकर वह शोक जन्म भूल गये। व्यास तैरने से जब थोड़ा आगे लगा कि मुमकिन है, साथी परित्राण कर गये हों, तब क्रोध के वेग से शोक दूर होने लगा।

नवकुमार ने देखा, गाँव नदी, आश्रय नदी, आदमी नदी, भोज्य नदी, पेय नदी, नदी का पानी बहुत ही स्वच्छ है; इधर भूख और थकान से उनकी श्रुति फटी जा रही थी। वेग जड़ों के बचाव के लिए, कोई आश्रय नदी, वदन का कपड़ा तक नदी। जड़ों की इस बहती बर्फ सी ठंडी इधर में नदी के किनारे, हिम वगमनेवाले आकाश के नीचे विना आश्रय के, विना कुछ ओढ़े, पड़ा रहना होगा। मुमकिन है, रात के व पय गीड़ जान लें। आज न लें, कल लेंगे। प्राण का नाश ही निश्चित है।

मन की चञ्चलता के कारण नवकुमार एक जगह देख तक नहीं बैठे रह सके। किनारा छोड़कर ऊपर चढ़े। इधर-उधर टहलते लगे। क्रमशः आँखें खुली। शिशिर के आकाश में नक्षत्र-मण्डली चुपचाप विकसित होने लगी, जैसे नवकुमार के देश से विकसित होती है, जैसे खिलते लगी। अन्धकार में सब जगह निर्जनता है, आकाश में, प्रान्त में, समुद्र में, सब जगह नीरवता है, केवल अविगल-कड़लवाले समुद्र का गजन और कदाचिन् वन्य पशुओं का खूब सुन पड़ता है। फिर भी नवकुमार उस आँखों में, शीत वगमनेवाले आकाश के नीचे शङ्करास्त्र के चरणों तक प्रमग्न करते रहे। कभी उपत्यका में, कभी अविन्यक्त पर्वत, कभी स्तूप के नीचे, कभी स्तूप-शिखर पर प्रमग्न करते रहे। चलते-चलते पद-पद पर हिंस्र पशु के आक्रमण ही सम्भावना है, परन्तु एक जगह बैठे रहने पर भी वह डर है।

घूमते घूमते नवकुमार थक गये । सारा दिन चिनः ग्वाये हुए हैं । इससे और भी अवसन्न हो गये । एक जगह बालीयाड़ी के पार्श्व में पीठ लगाकर बैठे । वर की मुखतः शय्यः यद आँडे । जब शारीरिक और मानसिक कष्ट की थकावट में चिन्ता आती है, तब कभी कभी नींद भी साथ साथ आती है । नवकुमार सोचते-सोचते नींद में डूब गये । अगर ऐसा नियम न होता तो शायद सामाजिक कलेशों के अप्रतिहत वेग सभी मध्द समय न सह सकते ।

चौथा परिच्छेद

स्तूप-शिखर पर

“—सविस्मये देखिला अदूर
भीषण-दर्शन मूर्ति ।”

—मेघनाद बध

जब नवकुमार की आंख खुली तब रात गहरी थी । अभी तक उन्हें वाय का शिकार नहीं होना पड़ा, यह उनके लिए तथ्य-जुब की बात हुई । डर-उधर निगाहें दौड़ाकर देखने लगे, वाय आ रहा है या नहीं । अकस्मान् सामने काकी दूर एक प्रकाश देखा । कहीं भ्रम न हुआ हो, इसलिए नवकुमार मन को एकाग्र कर उसकी तरफ देखने लगे । प्रकाश की परिधि क्रमशः बढ़ती हुई और उज्ज्वलतर होने लगी—यह आग का प्रकाश है, उन्हें विश्वास हुआ । विश्वास होते ही नवकुमार के जीने की आशा फिर उदीर हो उठी । धिना आदमी के रङ्ग इस प्रकाश का होना सम्भव नहीं । नवकुमार उठे; जिधर प्रकाश है, उसी तरफ बढ़े । एक बार मन में सोचा, “यह प्रकाश भूत का है ?—हो भी सकता है; परन्तु शंका से निरस्त रहन पर भी कहीं जान बचती है ?” यह सोचकर निर्भीक चित्त से प्रकाश को लक्ष्य करके चले । पेड़, लता, वायु के स्तूप, पद-पद पर उनकी गति गोकने लगे । पौधे और लताएँ मोड़कर, वायु के स्तूप लांघकर नवकुमार चले । प्रकाश के पास आकर देखा कि वायु के एक बहुत ऊँचे स्तूप के शिरोभाग पर आग जल रही है । उसके उजाले में

शिखर पर बैठे मनुष्य की मूर्ति आकाश-पट के चित्र की तरह देख पड़ रही है। नवकुमार शिखर पर बैठे मनुष्य के पास जायेंगे, यह संकल्प निश्चित कर बिना कुछ भी ढील पड़े हुए चले। अन्त में शिखर पर चढ़ने लगे। तब कुछ शंका होने लगी, फिर भी अकस्मित पदों से मृत्प पर चढ़ने लगे। बैठे हुए व्यक्ति के सामने आकर जो जो कुछ देखा, उसमें उन्हें रोमाञ्च हुआ। ठहरेंगे या लौटेंगे, यह निश्चित नहीं कर सके।

शिखर पर बैठे आदमी आगें भँदकर ध्यान कर रहा था। पहले नवकुमार को नहीं देखा। नवकुमार ने देखा, उसकी उम्र प्रायः पचास साल की होगी। कपाम का कोई वस्त्र वह पहने हुए है या नहीं, यह नहीं नज़र आया। कटि से जाँघ तक वायस्वर से आवृत है। गले में भद्राक्ष की माला। आयत मुखमण्डल दाढ़ी-भूँछ और जटाओं से घिरा है। सामने लकड़ी की आग जल रही है। उमी आग की लपटें देखते हुए नवकुमार वहाँ तक जा सके थे। नवकुमार का एक विकट दुर्गन्ध मिलने लगी। उसके आसन की तरफ निगाह डालकर इसका कारण समझे। जटावर्गी एक छिन्नमस्तक गलित शव पर बैठे हुए है। भय से और भी देखा, सामने नर-कपाल रखवा है, उसमें रक्तवाण द्रवपदार्थ रखवा है। चारों तरफ जगह जगह हाड़ पड़े हुए हैं। यहाँ तक कि योग में बैठे व्यक्ति के गले की भद्राक्ष की माला के बीच बीच भी हाड़ के छोटें छोटें टुकड़े पड़े हुए हैं। नवकुमार मात्रमुग्ध हो गये। आगे बढ़ें या जगह छोड़ दें, समझ नहीं सके। उन्होंने कापालिकों की कथाएँ सुनी थीं। समझे कि यह व्यक्ति चोर कापालिक है।

जब नवकुमार पहुँचे थे, तब कापालिक मन्त्र की सन्धन में, या जप में, या ध्यान में मग्न था। नवकुमार को देखकर जग भी

परवा नहीं की। बड़ी देर बाद पड़ा, “कम्बुन ?” नवकुमार ने कहा, “ब्रह्मण ।”

कपालिक “निद्रा ।” कहकर पहले के काम में लगा । नवकुमार खड़े रहे ।

इस तरह अन्ध पहर बीत गया । इसके बाद कपालिक उठा और पहले की तरह नवकुमार से संस्कृत में कहा, “मामनुस्य ।”

यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि दूसरे समय नवकुमार कदापि इसके साथी न होते; परन्तु इस समय भूख और थकान से प्राण ओष्ठगत हो रहे थे, इसलिए कहा, “प्रभु की जैसी आज्ञा । परन्तु मैं भूख और प्यास से बहुत विकल हूँ, कहीं जाने पर भोजन प्राप्त होगा, आज्ञा कीजिए ।”

कपालिक ने कहा, “तुम मैत्री क भेजे हुए हो, मेरे साथ आओ, भोजन प्राप्त कर सकोगे ।”

नवकुमार कपालिक के पीछे पीछे चल । दोनो ने लम्बा रास्ता पार किया । रास्ते में कोई किसी से बोलना नहीं । अन्त में एक पाण्डुरटीर मिली: कपालिक पहले भीतर गया, फिर नवकुमार को भीतर जाने की आज्ञा दी, और नवकुमार के न जाने हुए किसी उपाय से एक चैल में आग जलाई । उसके उजाले में नवकुमार ने देखा वह कुल कुटी केवड़े के पत्तों से छाई है । उसके भीतर कई व्याघ्र-चर्म हैं । एक बड़ा जल और कुछ फल-मूल हैं ।

आग जलाकर कपालिक ने कहा, “फल-मूल जो कुछ है, भोजन कर सकते हो । पत्तों का दोना बनाकर कलम का पानी पीना । व्याघ्र-चर्म है, डकड़ा होते पर सोना । कोई विष नहीं, गहो: वाय का डर न करना । दूसरे वक्त मुझसे मुलाकात होगी । जब तक मुलाकात न हो, तब तक यह कुटी छोड़ना मत ।”

यह कहकर कापालिक चला गया । नवकुमार वह थोड़ा सा फल-मूल खाकर कुछ-कड़ुआ वह पानी पीकर परम परितृप्त हुए । इसके बाद रात्र की खाल पर लेटे । सारे दिन की थकावट के कारण जल्द ही गहरी नींद में आ गये ।

—

समय अस्तगामी सूर्य की मृदुल किरणों से नील जल का एक अंश द्रवीभूत सुवर्ण की तरह जल रहा है। बहुत दूर किमी यूरोपीय वर्णिक का समुद्र-प्रांत श्वेत पक्ष फैलाकर, बृहन् पक्षी की तरह, जलधि के हृदय में उड़ रहा है।

कितनी देर तक नवकुमार किनारे बैठे हुए अनन्य मन से जलधि की शोभा देखते रहे, इस सम्बन्ध में उस समय वे परिमाण-बोध-रहित थे। बाद के एक साथ प्रदोष का आंधरा आकर काले पानी के ऊपर बैठा। तब नवकुमार को होश हुआ कि आश्रम की गंजाज लेनी है। एक लम्बी साँस छोड़कर उठे। लम्बी साँस क्यों छोड़ी, यह इस नहीं बतला सके—तब उनके मन में किम भूतपूर्व मुख्य का उदय हो रहा था, कौन कहेगा? उठकर समुद्र की तरफ पीठ की। फिरते ही एक अपूर्व मूर्ति देखी।—उस गम्भीर नाद करनेवाले समुद्र के किनारे, सैकतभूमि पर सन्ध्या के अस्पष्ट प्रकाश में खड़ी अपूर्व रमणी-मूर्ति। केशभार-वेणी न देखी हुई, साँप जैसे लहराने वाले; कर्णाश्रित, पड़ी तक पहुँचते हुए; वालों के सामने देह-गन्तः जैसे चित्रपट पर चित्र देख पड़ रहा है। अलकावली की प्रचुरता के कारण मुख्यमण्डल पूर्ण रूप से नहीं देख पड़ रहा, फिर भी मेघों के हट जाने से निकलती हुई चोद की किरणों की तरह प्रतीत हो रहा है। विशाल आंग्रे में कटाक्ष है, बहुत स्थिर, बहुत म्निभ, बहुत गम्भीर अथच अतिमय। वे कटाक्ष इस सागर के हृदय पर क्रीड़ा करनेवाली चन्द्र-किरण-लम्बा की जैसी म्नि-ध्वज्ज्वल दीप्ति पा रहे थे। केश-गांश ने दोनों कन्धों और बाहों को ढँक लिया था। कन्धे बिलकुल नहीं देख पड़ते; बाहुयों की विमल श्री कुछ-कुछ देख पड़ती थी। रमणी की देह बिलकुल निगमग्न थी। मूर्ति के भीतर जो एक मोहिनी शक्ति थी, उसकी वर्णना नहीं की जा सकती। अर्द्धचन्द्र से निकलती हुई कौमुदी का रङ्ग, घने-काले केशजाल; एक

दूसरे के मिलाप से वर्ण और चिकुर दानों की जो श्री विक्रमिनी हो रही थी, वह गर्भीय नाद कर्नेवाले उस समुद्र के किनारे सन्ध्यालोक न देखने पर नहीं समझ में आ सकती, न उसकी मोदिनी शक्ति अनुभूत हो सकती है।

नवकुमार अकस्मात् ऐसी दर्शनात् प्रेक्षणीयं देखकर निःस्पन्द-शील होकर खड़े रहे। उनकी वक्रगति रुकित हो गई। स्तब्ध होकर देखने लगे। रमणी भी स्पन्दहीन थी। विज्ञान-अध्वों की स्थिर दृष्टि नवकुमार के भुज पर स्थान कर रखी। दाना के देखने में भद्र इतना ही है कि नवकुमार की दृष्टि चकित हुए आदमों की जैसी है, रमणी की दृष्टि में कोई बड़ लक्षण नहीं, परन्तु उसमें विशेष रूप में उद्भेद स्पष्ट हो रहा था।

अस्तु, समुद्र के निर्जन तट पर इस तरह दानों के तक एक दूसरे के देखने लगे। बहुत देर बाद तरुणी का कण्ठस्वर सुन पड़ा। उन्होंने बड़े ही मृदुल स्वर में पूछा, "पथिक, क्या तुम राह भूल गये हो?"

ऐसे कण्ठस्वर के साथ नवकुमार की हृदयवीणा बज उठी। विचित्र इस हृदय-यन्त्र की तन्त्रियों समय-समय पर ऐसी लयहीन हो रहती हैं कि जितना भी यत्र किया जाय, किसी तरह एक दूसरी से मिलती नहीं; परन्तु एक शब्द से, रमणी-कण्ठ से निकल एक स्वर से संशोधित हो जाती हैं; सब लययुक्त हो जाती हैं, संसार-यात्रा उसी समय से सुखमय सङ्गीत-प्रवाह मालूम देती है। नवकुमार के कानों में उसी तरह यह ध्वनि बजी।

"पथिक क्या तुम राह भूल गये हो?" यह ध्वनि नवकुमार के कानों में पेठी। क्या अर्थ है, क्या उत्तर देना चाहिए, कुछ भी समझ में नहीं आया। ध्वनि जैसे हर्ष से कांपती हुई फिरने लगी; जैसे हवा में वही ध्वनि वही; पेड़ों के पत्तों में मर्मगित होने लगी:

सागर-नाद में जैसे मग्दीभूत होने लगी। सागर-वसन्ता पृथ्वी सुन्दरी है: रमणी सुन्दरी है: ध्वनि भी सुन्दरी है। हृदय की तन्त्री में सौन्दर्य की लय उठने लगी।

केई उत्तर न पाकर रमणी ने कहा, "आओ।" यह कहकर तन्त्री चली, पदक्षेप निगाह में नहीं आते। वसन्त में धीमी हवा में चालित शुभ्र भेद्य की तरह धीरे-धीरे अलक्ष्य पदक्षेप में चली। नवकुमार कल के पुतले की तरह साथ साथ चले। एक जगह एक छोटा वन घूमना पड़ा। वन के अन्तर्गत में जाने पर फिर सुन्दरी को नहीं देखा। वन का चक्कर घूमकर देखा, सामने कुटी थी।

छठा परिच्छेद

कापालिक के साथ

“कथं निगडसंयताभि द्रुतम्
नयामि भवतीमितः—”

—गन्नावली

नवकुमार कुटी के भीतर जाकर द्वार बन्द कर दृथेली पर सरग्वकर बैठे। फिर जल्दी सर नहीं उठाया।

“स्यः यह देवी है, यः मानवी है, यः कापालिक की केवल माया है?” नवकुमार निःस्पन्द होकर इस विषय का आन्दोलन करने लगे। कुछ भी नहीं समझ सके।

अन्यमनस्क थे, इसलिए नवकुमार एक दूसरा व्यापार नहीं देख पाये। उसी कुटी में उनके आने से पहले से एक चैला जल रहा था, बाद के काफी रात बीतने पर जब याद आयी कि मायंकृत्य असमाप्त है, तब पानी की खोज में चिता में निवृत्त होकर इस विषय की अमम्भवता हृदयङ्गम कर सके। केवल प्रकाश नहीं, चावल आदि पाकेपयोगी कुछ-कुछ सामग्री भी है। नवकुमार भूल नहीं, सोचा यह भी कापालिक का काम है, इस जगह विस्मय का विषय क्या है?

“शम्यञ्च गृहमागतम्” बुरी बात नहीं। “भाज्यञ्च उद्गातम्” कहने पर बात और भी सफ़र हो जाती है। नवकुमार इस कथन का साहाय्य नहीं समझते थे, ऐसी बातें नहीं। मायंकृत्य समाप्त कर

कुटी में पाये हुए मिट्टी के एक पात्र में चावल उवालकर भोजन किया ।

दूसरे दिन सुबह को चर्मशय्या से उठकर ही समुद्र के किनारे चले । पिछले दिन आने जाने के कारण आज कुछ ही तकलीफ से गस्ता मालूम कर लिया । प्रातःकृत्य समाप्त करके प्रतीक्षा करने लगे । किसकी प्रतीक्षा करने लगे ? पहले की दिखी मायाविनी फिर इस जगह आयेंगी, ऐसी आशा नवकुमार के हृदय में कहाँ तक प्रबल हुई थी, इस नहीं कह सकते, परन्तु वह जगह वे छोड़ नहीं सके । काफ़ी दिन चढ़ आने पर भी वहाँ कोई नहीं आया । तब नवकुमार उस जगह के चारों ओर चक्कर लगाने लगे । वृथा अन्वेषण था । मनुष्य के आने का चिह्न तक नहीं देख पड़ा । फिर लौटकर उसी जगह आकर बैठे । सूर्य अस्त हुआ । अँवेर हो आने लगा । नवकुमार हताश होकर कुटी लौट आये । शाम को समुद्र के किनारे से लौटकर नवकुमार ने देखा कि कापालिक कुटी में धरातल पर चुपचाप बैठा हुआ है । नवकुमार ने पहले स्वागत-मन्त्रोचन किया, इसका कापालिक ने कोई उत्तर नहीं दिया । नवकुमार ने कहा, “अब तक प्रभु के दर्शनों से मैं क्यों वंचित रहा ?” कापालिक ने कहा, “मैं अपने व्रत में नियुक्त था ।”

नवकुमार ने घर जाने की इच्छा व्यक्त की । कहा, “गस्ता मालूम नहीं, राह-सूच भी नहीं; जो कुछ होना चाहिए, प्रभु के दर्शनों से होगा, इसी भरोसे पर हूँ ।”

कापालिक ने फिर कहा, “मेरे साथ आओ ।” यह कहकर उदासीन उठकर खड़े हो गये । घर जाने का कोई उत्तम उपाय होगा, इस आशा से नवकुमार उनके पीछे-पीछे चले ।

तब तक मन्त्रा का प्रकाश तिरोहित नहीं हुआ । कापालिक आगे-आगे, नवकुमार पीछे-पीछे जा रहे थे । अकस्मान् नवकुमार

की पीठ में किसी का कोमल कर स्पर्श हुआ। पीछे फिरका जो कुछ देखा, उसमें स्पन्दहीन हो गये। वही पड़ी तक लम्बे बने केशों-वाली वन्य देवी-मूर्ति थी, पहले की तरह निःशब्द, निःस्पन्द। कहाँ से यह मूर्ति निकलकर उनके पीछे आई ! नवकुमार ने देखा, रमणी मुँह से उँगली लगाये हुए है। नवकुमार समझ गये कि रमणी बोलने का मन कर रही है। निवेद्य की बेसी आवश्यकता भी नहीं थी। नवकुमार कोन-सी धतर्यानि करेंगे ? वे वहाँ चमकृत होकर खड़े हो गये। कापालिक पर सव नहीं देख पाये। अग्रे बढ़ता चला गया। उदसीन के सुनने से दूर होने पर रमणी ने मधुर स्वर से कुछ कहा। नवकुमार के कानों में ये शब्द आयें—“कहाँ जा रहे हो ? मत जाओ। लौट जाओ—भागो।”

यह बात समाप्त करके ही उक्तिकाशिणी डट गई, उत्तर सुनने के लिए नहीं रुकी। नवकुमार कुछ देर तक अभिभूत हुए, जैसे खड़े रहे, पीछे लौटने के लिए व्यग्र हुए, परन्तु रमणी किस ओर गई, इसका कुछ निश्चय न कर पाकर मन ही मन कहने लगे, “यह किसी की माया है या मुझे ही भ्रम हो रहा है ? जो बात सुनी, वह तो आशंका सूचित करती है; लेकिन किस बात की आशंका ? तांत्रिक लोग सब कुछ कर सकते हैं। तो क्या भागूँ ? कहाँ भागने की जगह है ?”

“नवकुमार इस तरह की चिन्ता कर रहे थे, ऐसे समय देखा, कापालिक उन्हें साथ आता हुआ न देखकर लौट रहा है। कापालिक ने कहा, “देख भ्यों कर रहे हो ?”

जब आदमी अपने कर्तव्य का निश्चय नहीं कर पाता, तब वह पहल जिस ओर प्रेरित किया जाता है, उसी ओर जाता है। कापालिक के फिर से बुलाने पर बिना एक बात कहे नवकुमार उसके पीछे-पीछे चले।

कुछ दूर जाने पर मिट्टी की चारदीवारा में बिगि एक कुटी देख पड़ी। उस कुटी भी कद सकते हैं, झोटा गृह भी कद सकते हैं। परन्तु इसमें हमारा कोई प्रयोजन नहीं। इसके पीछे ही सिकतामय मनुष्यता है। गृह की बगल में कापालिक नवकुमार का उसी सेकत में ले चल। ऐसे समय ही की गति में वह पड़ते दिखी समाधि। उनकी बगल में निकल गई। जाती हुई उनके कान में कह गई, "अब भी भरो। नामास के बिन त्रात्रिक की पूजा नहीं जाती, क्या तुम नहीं जानते?"

नवकुमार के ललाट पर पर्मान निकलते लगा। दुर्भाग्य से युवती की यह बात कापालिक के कान में गई। उसने कहा, "कपाल-कुण्डल।"

वह स्त्रिया नवकुमार के कानों में मेरुगर्जन की तरह ध्वनित हुआ। परन्तु कपालकुण्डल ने कोई उत्तर नहीं दिया।

कापालिक नवकुमार का हाथ पकड़कर ले जाने लगा। मनुष्य-वर्ती के का-स्पर्श से नवकुमार के खून नसा में से-गुना अधिक वेग से बढ़ने लगा, उसे हुआ सदस फिर लेंट। कहा, "हाथ छोड़िए।"

कापालिक ने जवाब नहीं दिया। नवकुमार ने फिर पूछा, "सुने कहा ले जा रहे हैं?"

कापालिक ने कहा, "पूजा की जगह।"

नवकुमार ने पूछा, "क्यों?"

कापालिक ने कहा, "वैयर्थ।"

बड़े तीव्र वेग से नवकुमार ने अपना हाथ खींचा। जिस थल से उछलते हाथ खींचा था, उससे सावधान आदमी अगर उनका हाथ पकड़े होता, तो हाथ छड़ता तो दूर, वह अभीन पर गिर जाता। लेकिन कापालिक की देह तक नहीं झिली। नवकुमार की कलाई

उनकी मुट्ठी में ही रही। नवकुमार के दाढ़ों के कुल जोड़ जैसे अलग हो गये। अधमरे की तरह नवकुमार कापालिक के साथ-साथ चले।

भैरव-भूमि के बीचोबीच ले जाये जाकर नवकुमार ने देखा, पहले दिन की तरह वहाँ एक बड़े-से लकड़ में आग जल रही है। चारों ओर तार्किक पूजा के आयेजन है। उनमें नरकपाल में भरा आसव है परन्तु शब नहीं। अनुमान किया, उन्हें ही शब होना होगा।

कुछ मृग मज्जित लता-गुग्म वहाँ पहले से एकत्र किये हुए थे। कापालिक उनमें नवकुमार को कसकर बाधने लगा। नवकुमार ने भयंकर अपना जोर लगाया, परन्तु फल कुछ भी नहीं हुआ। उन्हें विश्वास हुआ कि इस उम्र में भी कापालिक मतवाल दाढ़ी का बल रखता है। नवकुमार का जोर लगाता देखकर कापालिक ने कहा, "मूर्ख! जिस लिए बलप्रकाश करते हो? तुम्हारा जन्म आज मार्क हुआ। भैरवी की पूजा में तुम्हारा यद साम्पिण्ड अर्पित होगा। इसमें अधिक तुम्हारे जैसे मनुष्य का और कौनसा सौभाग्य हो सकता है?"

नवकुमार को अच्छी तरह बाधकर कापालिक ने बाह्य पर डाल रखवा और वध की प्रारम्भिक पूजा में नियुक्त हुए।

मृगी लता बड़ी मज्जित थी और बन्धन बड़ा दृढ़। मृत्यु निकट है। नवकुमार ने इस देवत के चरणों पर चित्त को निविष्ट किया। एक बार जन्मभूमि याद आई, अपना मुख का भजन याद आया, एक बार बहुत दिन के गुजरे दिन और मन्ता के मुँह याद आये, दो-एक वृद्ध आसू-बारू में मृग गये। बलि की प्रारम्भिक क्रिया समाप्त कर कापालिक वध के लिए खड़ा होने का आसन छोड़कर उठा। परन्तु जहाँ खड़ा रखा था, वहाँ खड़ा नहीं पाया।

आश्चर्य ! कापालिक कुछ विस्मित हुआ । उसके मन में निश्चय हो रहा था कि तीसरे पहर खड्ग लाकर यथास्थान उसने रक्खा था और उमे स्थानान्तरित नहीं किया । फिर खड्ग कहाँ गया ? कापालिक ने इधर-उधर खाजा, लेकिन कहीं भी नहीं पाया । तब पहले कही हुई कुटी की तरफ मुँह करके कपालकुण्डला को आवाज दी; परन्तु बार बार वृत्ताने पर भी कपालकुण्डला ने कोई उत्तर नहीं दिया । तब कापालिक की आँखें लाल और भौहें कुञ्चित हुई । द्रुतपद से गृह की तरफ चला । इस अवकाश में लता के बन्धन तोड़ने का नवकुमार ने एक बार और प्रयत्न किया, परन्तु वह प्रयत्न भी निष्फल हुआ ।

इस समय पास बालू पर बड़ी कामल पदध्वनि हुई । यह पदध्वनि कापालिक की नहीं थी । नवकुमार ने आँखें फेरकर देखा—वही माहिनी, कपालकुण्डला है । उसके हाथ में खड्ग भूम रहा है ।

कपालकुण्डला ने कहा, “चुप ! बातें न करना । खड्ग मेरे ही पास है । चुग रक्खा है ।”

यह कहकर कपालकुण्डला बहुत जल्दी-जल्दी नवकुमार के लता-बन्धन खड्ग से काटने लगी । निमेषमात्र में उन्हें मुक्त कर दिया । कहा, “भागो, मेरे पीछे-पीछे आओ, रास्ता बता देती हूँ ।”

यह कहकर कपालकुण्डला तीर की गति से रास्ता दिखाती हुई चली । नवकुमार उछलकर उसके पीछे-पीछे दौड़े ।

सातवाँ परिच्छेद

अन्वेषण

*“ And the great lord of Luna
Fell at that deadly stroke ;
As falls on mount Alvernus
A thunder-smitten oak.”*

– Lays of Ancient Rome

इस तरफ कापालिक गृह के भीतर एक-एक कोना गोजकर, न खड्ग और न कपालकुण्डला को पाकर, मन्दिथ चित्त से सैकत-भूमि में लौट आया। वहाँ आकर देखा कि नवकुमार वहाँ नहीं हैं। इससे उसे बड़ा विस्मय हुआ। कुछ देर बाद ही छिन्न लतावन्धन पर निगाह गई। तब इसका स्वरूप समझकर, कापालिक नवकुमार की गोज में दौड़ा। परन्तु एकांत में पलातक किस तरफ किस गन्ते गये हैं, इसका निश्चय करना दुःसाध्य है। अंधेरे के कारण किसी पर भी उसकी निगाह नहीं गई। इसलिए बातचीत के शब्द का लक्ष्य कर देर तक इधर-उधर भ्रमण करता रहा। परन्तु सब समय गले की आवाज भी नहीं सुन पड़ी। इसलिए विशेष रूप से निरीक्षण करने के अभिप्राय से बालू के एक ऊँचे शिखर पर चढ़ा। कापालिक एक तरफ से चढ़ा, उसके दूसरी तरफ वर्षा के जल-प्रवाह से स्तूप का तलदेश कट गया था, यह उसे मालूम नहीं

था । शिखर पर आरोहण करते ही कापालिक के शरीर के भार से वह पतनोन्मुख स्तूप-शिखर वड़े जोर से धराशायी हो गया । स्तूप के धराशायी होते वक्त पर्वत के शिखर से गिरे जैसे की तरह कापालिक भी उसके साथ गिर गया ।

आठवाँ परिच्छेद

आश्रम में

*"And that very night
Shall Romeo bear thee to Mantua."*

— Romeo and Juliet.

अमावस की उस रात अंधेरी रात में दोनों ऊँचे आश्रम से वन के भीतर पड़े। जङ्गली रास्ते नवकुमार के जाने हुए नहीं थे। केवल साथ चलनेवाली पोंडशी को देखते हुए उसके कदम पर कदम रखकर चलने के सिवा उनके लिए दूसरा उपाय नहीं था। परन्तु अंधेरे में वन के भीतर रमणी सब समय नहीं देख पड़ सकती, युवती एक तरफ़ देड़ती थी तो नवकुमार दूसरी तरफ़ जाते थे। रमणी ने कहा, "मेरा आँचल पकड़ो।" नवकुमार उसका आँचल पकड़कर चले। क्रमशः व लोग पक्षेप मन्द करने हुए चले। अंधेरे में कुछ भी नहीं नजर आता था: मिक कर्मा कहीं किसी नक्षत्र के प्रकाश से किसी बालुका-मृप को कुछ शिखर देख पड़ता था, कहीं जुगनुआ से घिरे वृक्ष का आकार दृष्टिगोचर होता था।

कपालकुण्डला पथिक को साथ लेकर निभृत अरण्य के भीतर पहुँची। तब रात का दूसरा पहर था। सामने अंधेरे में वन के भीतर एक बहुत ऊँचे देवालय का शिखर देख पड़ा। उसके पास ईंटों की चारदीवार से घिरा एक घर भी देख पड़ा। कपालकुण्डला चारदीवार के द्वार के पास जाकर उसमें थपकियाँ देने लगी।

बार-बार करावात करने पर एक व्यक्ति ने भीतर से कहा, “कौन हो, कपालकुण्डला हो शायद ?” कपालकुण्डला ने कहा, “देर-वाजा खोलो।”

पूछनेवाले ने आकर द्वार खोल दिया। जिस व्यक्ति ने द्वार खोला वह उस देवालय की अधिष्ठात्री देवी का सेवक या अधिकारी है। उम्र में, पचास साल पार कर गया होगा। कपालकुण्डला उसके बिल केशवाले मस्तक के हाथ से झुकाकर अपने अधर के पास उसके कान ले आई और दो चार शब्दों में अपने साथी की अवस्था समझा दी।

अधिकारी बहुत देर तक मर हथेली पर लिये मोचते रहे। बाद में कहा, “यह बड़ा विपम व्यापार है। महापुरुष चाहें तो सब कुछ कर सकते हैं। जो कुछ हो, माँ के प्रमाद से तुम्हारा अमङ्गल नहीं होगा। वह आदमी कहाँ है ?”

“आया” कहकर कपालकुण्डला ने नवकुमार को बुलाया। नवकुमार आड़ में खड़े थे, बुलाये जाकर वर के भीतर गये। अधिकारी ने उनसे कहा, “आज यहीं छिपे रहो, कल सुबह तुम्हें मेदिनी-पुर के रास्ते छोड़ आऊँगा।”

वात ही वात से अधिकारी क्रमशः समझे कि नवकुमार का अभी तक भोजन नहीं हुआ। इससे अधिकारी उनके भोजन के इन्तजाम में लगे लेकिन नवकुमार ने यह प्रार्थना की कि भोजन की उन्हें बिलकुल इच्छा नहीं, वे मिरक विश्राम चाहते हैं। अधिकारी ने अपनी रसाई में नवकुमार के सोने के लिए बिस्तर लगा दिया। नवकुमार के लोटने पर कपालकुण्डला समुद्र के किनारे लौटने का उद्योग करने लगी। उस पर स्नेह की दृष्टि डालते हुए अधिकारी ने कहा, “जाना मत। कुछ ठहरो। एक भीख माँगता हूँ।”

कपालकुण्डला—क्या ?

अधिकारी—जब से तुम्हें देखा है, तुम्हें माँ कहता हूँ। देवी के चरण छूकर शपथ कर सकता हूँ कि तुम्हें माता से अधिक स्नेह करता हूँ। मेरी भोग्य की अवहेला तो नहीं करोगी ?

कपालकुण्डला—नहीं करूँगी।

अधि०—मेरी यही भिन्ना है कि तुम वहाँ अब लौट न जाना।

कपा०—क्यों ?

अधि०—जाने पर तुम्हारी रक्षा नहीं होगी।

कपा०—यह तो जानती हूँ।

अधि०—तो फिर और पूछती क्यों हो ?

कपा०—न जाकर कहाँ जाऊँगी ?

अधि०—इसी पथिक के साथ दूमरे देश चली जाओ।

कपालकुण्डला नीग्व हो रही। अधिकारी ने पृच्छा—माँ, क्या सोच रही हो ?

कपा०—जब तुम्हारा शिष्य आया था, तब तुमने कहा था कि युवती का इस तरह युवा पुरुष के साथ जाना अनुचित है; अब जाने को क्यों कह रहे हो ?

“तब तुम्हारे जीवन की शंका नहीं की। स्वाम तौर से जिस विशद उपाय की सम्भावना नहीं थी, अब उसकी है; आओ, माता की आज्ञा ले आये।” यह कहकर, दिया हाथ में ले, अधिकारी ने मन्दिर का द्वार खोला। कपालकुण्डला भी उनके साथ-साथ गई। मन्दिर में आदमी के बराबर की कगल काली-मूर्ति स्थापित थी। दोनों ने भक्ति-भाव से प्रणाम किया। आचमन करके अधिकारी ने पुष्पपात्र से एक न टूटा हुआ बित्त्वपत्र लेकर मन्त्रपूत किया और उसे प्रतिमा के पैर पर रख कर उसकी तरफ देखते रहे। कुछ देर बाद अधिकारी ने कपाल-कुण्डला से कहा—“माँ, देखा, देवी ने अर्घ्य ग्रहण किया

है, बित्त्वपत्र गिरा नहीं; जिस कामना से अर्घ्य दिया था, उसमें अवश्य मङ्गल है। तुम इस पथिक के साथ स्वच्छन्दता से जाओ। परन्तु मैं विषयी मनुष्य की रीतियाँ और चरित्र जानता हूँ। तुम अगर गले पड़कर इसके साथ जाओगी, तो यह आदमी अपरिचित युवती को साथ लेकर बस्ती में जाते लज्जित होगा। तुम से भी लोग घृणा करेंगे। तुम कह रही हो, यह व्यक्ति ब्राह्मण है। इसके गले में भी यज्ञोपवीत देख रहा हूँ। यह अगर तुम्हें व्याहकर ले जाय, तो सब मङ्गल होगा। नहीं तो मैं भी तुम्हें इसके साथ जाने के लिए नहीं कह सकता।”

“व्या—ह !” इस शब्द का कपालकुण्डला ने बहुत धीरे-धीरे उच्चारण किया। कहने लगी, “व्याह का नाम तो तुम लोगों के मुख से सुनती हूँ, परन्तु किसे कहते हैं, सविशेष नहीं जानती। क्या करना होगा ?”

अधिकारी सिर्फ जग मुस्कुगाकर बोले, “व्याह ही स्त्रियों के लिए एकमात्र धर्म की सीढ़ी है। इसी लिए स्त्री को सहधर्मिणी कहते हैं। जगन्माता भी शिव की विवाहिता हैं।”

अधिकारी ने सोचा, उन्होंने सब कुछ समझा दिया। कपाल-कुण्डला ने सोचा, वे सब कुछ समझ गई। कहा, “ऐसा ही हो। परन्तु उन्हें छोड़कर जाते मेरा मन नहीं गवाही दे रहा। उन्होंने इतने दिनों तक मेरा पालनपोषण किया है।”

अधि०—किम लिए पालनपोषण किया है, तुम नहीं जानतीं। स्त्री का सतीत्व नष्ट किये बिना तान्त्रिक सिद्ध नहीं होता, यह तुम नहीं जानतीं। मैंने भी तन्त्रादि पढ़े हैं। माता जगदम्बा संसार की माता हैं। यही सती का सतीत्व है—सतियों में प्रधान। ये सतीत्व-नाशवाली पूजा कभी ग्रहण नहीं करतीं। इसी लिए मैं महापुरुष की इच्छा के प्रतिकूल काम कर रहा हूँ। भागने पर तुम कदापि

कृतघ्न नहीं होगी। सिर्फ़ अबतक सिद्धि का समय नहीं आया, इसी लिए तुम बची रही हो। आज तुमने जो काम किया है, इसमें प्राणों की भी शंका है। इसी लिए कह रहा हूँ, भागो। भवानी की भी यही आज्ञा है। इस लिए जाओ। अगर मेरे लिए यहाँ रग्वने का उपाय होता तो रग्वता। परन्तु वह भगोमा जो नहीं, यह तो जानती हो।

“व्याह ही हो।” यह कहकर दोनों मन्दिर से बाहर निकले। कपालकुण्डला के बैठकर अधिकारी नवकुमार की शय्या के पास एक कमरे में जाकर उनके मिगहाने बैठे। पृथ्वा, “महाशय, क्या अपा सोते हैं?”

नवकुमार की अवस्था नींद लेने की नहीं; वे अपनी दशा सोच रहे थे। कहा, “जी, नहीं।”

अधिकारी ने कहा, “महाशय, एक बार परिचय लेने के लिए आया हूँ। आप ब्राह्मण हैं?”

नव०—जी, हाँ।

अधि०—कौन श्रेणी?

नव०—राक्षीय श्रेणी।

अधि०—हम लोग भी राक्षीय ब्राह्मण हैं। उन्कल न समझि-
पगा। वंश में कुलाचार्य हैं, लेकिन इस समय माता के चरणों
पर हैं। महाशय का नाम?

नव०—नवकुमार शर्मा।

अधि०—निवास?

नव०—सप्तग्राम।

अधि०—आप लोग किस घरवाले हैं?

नव०—वन्द्योपाध्याय।

अधि०—कितनी शादियाँ की हैं ?

नव०—सिर्फ एक ।

नवकुमार ने कुल बातें खोलकर नहीं बतलाई। वास्तव में उनकी एक शादी भी नहीं थी। उन्होंने रामगोविन्द घोपाल की कन्या पद्मावती से विवाह किया था। विवाह के बाद कुछ दिन पद्मावती नैहर रहीं, बीचबीच मसुराल आती-जाती रहीं। जब उनकी उम्र तेरह साल की थी, उनके पिता अपने परिवार के साथ पुरुषोत्तम (जगन्नाथ) के दर्शन करने गये थे। इस समय पठान, शाह अकबर से बङ्गाल से निकाले जाकर, उड़ीसा में डेरा डाले हुए थे। उनके दमन के लिए अकबर शाह पूरा प्रयत्न कर रहे थे। जब रामगोविन्द घोपाल उड़ीसा से लौट रहे थे, तब मोगल और पठानों में लड़ाई छिड़ी हुई थी। आते समय रास्ते में वे पठान-सेना के हाथ में पड़े। पठान उस समय लौकिक व्यवहार से रहित हो रहे थे। वे लोग निरपराध पथिकों पर अर्थ के लिए बल प्रयोग करने लगे। रामगोविन्द कुछ उग्र स्वभाव के थे, पठानों को खरी-खाटी सुना चले। इसका फल यह हुआ कि वे सपरिवार कैद हो गये; अन्त में जातीय धर्म छोड़कर सपरिवार मुसलमान होने पर उन्हें छुटकारा मिला।

रामगोविन्द घोपाल सपरिवार जान लेकर घर आये सही, लेकिन मुसलमान हो गये थे, इस लिए आत्मीयों की समाज से एक साथ बहिष्कृत हुए। इस समय नवकुमार के पिता जीवित थे। उन्हें जातिभ्रष्ट समर्थी के साथ जातिभ्रष्ट पुत्रवधू का परित्याग करना पड़ा। नवकुमार के साथ उनकी स्त्री की फिर मुलाकात नहीं हुई।

अपने जनों से परित्यक्त और समाज से च्युत होकर रामगोविन्द घोपाल अधिक दिनों तक अपने गाँव में नहीं रह सके। इस कारण

मे भी और राजप्रसाद से ऊँचा पद पाने की आशा से भी वे अपने परिवार के साथ राजधानी राजमहल में जाकर रहने लगे। दूसरा धर्म ग्रहण करके उन्होंने सपरिवार मुसलमान नाम धारण किये। राजमहल जाने के बाद समुद्र की अथवा स्त्री की क्या दशा हुई, इसके मालूम करने का नवकुमार के लिए कोई उपाय नहीं रहा और अब तक कभी कुछ मालूम भी नहीं कर सके। वैराग्य के कारण नवकुमार ने दूसरी शादी नहीं की। इसी लिए कहा, उनकी एक शादी भी नहीं थी।

अधिकांश ये सब बातें नहीं जानते थे। उन्होंने सोचा, “कुलीन के दो भी व्याह्र हो तो क्या बुरा है?” खुलकर कहा, “आप से एक बात पूछने आया था। जिस कन्या ने आप के प्राण बचाये हैं, परहितार्थ अपने प्राण भी उसने दे दिये हैं। जिस महापुरुष के आश्रय में यह रहती है, वे बड़े भयंकर स्वभाव के हैं। आपकी जो दशा हुई थी वही, उनके पास लौटने पर, इसकी भी होगी। इसका कोई उपाय क्या आप नहीं सोच सकते?”

नवकुमार उठकर बैठे। कहा, “मैं भी वही शंका कर रहा था। आप सब कुछ जानते हैं, इसका उपाय कीजिए। मेरे प्राण देने पर भी अगर किसी का प्रत्युपकार हो तो मैं इसके लिए भी तैयार हूँ। मैं ऐसा संकल्प कर रहा हूँ कि मैं उस नरवातक के पास लौटकर आत्मसमर्पण करूँ तो इसकी रक्षा होगी।”

हँसकर अधिकांश ने कहा, “तुम पागल हो। इसमें क्या फल होगा? तुम्हारे भी प्राण जायेंगे और इसके प्रति महापुरुष का क्रोध भी कम नहीं होगा। इसका एक ही उपाय है।”

नव०—वह कौन सा उपाय?

अधि०—आपके साथ इसका भागना। लेकिन यह बड़ा दुर्घट है। मेरे यहाँ रही तो दो-एक दिन में पकड़ ली जायगी। इस

मन्दिर में महापुरुष सदा आते जाते हैं। इसलिए कपालकुण्डला के भाग्य में अशुभ देख रहा हूँ।

नवकुमार ने आग्रह के साथ पूछा, “मेरे साथ भागना दुर्वट क्यों है ?”

अधि०—यह किसकी लड़की है, किस कुल में पैदा हुई है, यह आप कुछ नहीं जानते; किसकी पत्नी है, कैसा चरित्र है, यह आपको कुछ नहीं मालूम। आप इसे कैसे सङ्गिनी कीजिएगा ? सङ्गिनी करके ले जाने पर भी क्या आप इसे अपने घर में जगह देंगे ? और अगर जगह नहीं देंगे तो यह अनाथा जायगी कहाँ ?

कुछ देर तक विचार करके नवकुमार ने कहा, “मेरे प्राण बचानेवाली के लिए मुझे कोई भी काम असाध्य नहीं। ये मेरे परिवार में मिलकर रहेंगी।”

अधि०—अच्छा। परन्तु जब आपके आत्मीय स्वजन पूछेंगे, यह किसकी स्त्री है, तब आप क्या जवाब देंगे ?

नवकुमार फिर विचारकर बोले, “आप ही इसका जवाब बता दीजिए, मैं वही जवाब दूँगा।”

अधि०—अच्छी बात है। लेकिन यह एक पागल से ज्यादा का गस्ता तुम दोनों युवक-युवती बिना किसी दृसगी सहायता के जाओगे किस तरह ? लोग देख सुनकर क्या कहेंगे ? आत्मीय-स्वजनों की आँखों का क्या समझाओगे ? और मैंने भी इस कन्या को माँ कहा है। मैं ही फिर किस तरह इसे अज्ञातचरित्र युवा के साथ अकेली दूर देश भेज दूँ ?

नवकुमार ने कहा, “आप साथ चलिए।”

अधि०—मैं साथ जाऊँगा ? भवानी की पूजा कौन करेगा ?

नवकुमार ने चुन्ध होकर कहा, “तो कोई उपाय आप नहीं कर सकते ?”

अधि०—एक ही उपाय हो सकता है, लेकिन वह आपकी उदारता की प्रतीक्षा में है।

नव०—वह क्या ? मैं किस काम से मुँह फेंग रहा हूँ ? कौन सा उपाय है, कहिए।

अधि—सुनिष्ट। ये ब्राह्मण-कन्या हैं। इनका वृत्तान्त मुझे सविशेष मालूम है। ये वचपन में किस्तान-तम्करो में चुगाई गई थीं; जहाज़ टूट जाने के कारण वे इन्हें समुद्र के किनारे छोड़ गये थे। यह सब हाल बाद को इसके पाम से आप अच्छी तरह मालूम कर सकेंगे। इसे पाकर कापालिक ने अपने योग की सिद्धि की कामना से इसे पाला था। जल्द अपने प्रयाजन की सिद्धि करते। ये अब तक अनूढ़ा हैं। इनका चरित्र परम पवित्र है। आप इनसे विवाह कर इन्हें अपने घर ले जाइए। कोई कुछ न कह सकेगा। मैं यथा शास्त्र विवाह कर दूँगा।

नवकुमार शय्या से उठकर खड़े हो गये। बहुत जल्द जल्द कदम उठाते हुए इधर-उधर टहलने लगे। कोई जवाब नहीं दिया। अधिकारी ने कुछ देर बाद कहा—आप इस वक्त साइये। कल सुबह मैं आपको जगाऊँगा। इच्छा हो तो अकेले चल जाइएगा, आपको मेदिनीपुर के रास्ते छोड़ आऊँगा।

यह कहकर अधिकारी विदा हुए। जाते समय मन ही मन कहने लगे, “राढ़ देश की बटकता * कुछ भूल गया हूँ क्या ?”

* ‘घटक’ बङ्गाल में विवाह रचानेवाले को कहते हैं।

नवाँ परिच्छेद

देव-निकेतन में

“कएव—अलं भदितेनः स्थिरा भव, इतः पन्थानमालोकय ।”

—शकुन्तला ।

सुबह अधिकारी नवकुमार के पास आये । देखा, तब तक नवकुमार सोये नहीं थे । पृष्ठा, “अब क्या कर्तव्य है ?”

नवकुमार ने कहा, “आज से कपालकुण्डला मेरी धर्मपत्नी हैं । इनके लिए संसार छोड़ना होगा तो वह भी करूँगा । कौन कन्या-सम्प्रदान करेंगे ?”

अधिकारी का मुँह हर्ष में उफुल्ल हाँ गया । सोचने लगे, “इतने दिन बाद जगदम्बा की कृपा से मेरी कपालिनी की शायद गति हुई ।” खुलकर कहा, “मैं सम्प्रदान करूँगा ।” अधिकारी अपने शयन-कक्ष में फिा गये । एक बधने में बहुत ही जीर्ण पुगने ताड़-पत्र थे । उनमें तिथि-नक्षत्रादि का लेखा था । वह सब समझकर लौट आकर बोले, “आज यद्यपि विवाहवाला दिन नहीं, फिर भी कोई चित्र नहीं । गोधूलि-लघ्न में कन्या-सम्प्रदान करूँगा । तुम सिर्फ आज उपासे रहोगे । कुल के आचरण घर जाकर कराना । एक दिन के लिए तुम्हें छिपा रख सकता हूँ, ऐसी जगह है । आज अगर वे आर्योगे, तो तुम लोगों की टोह उन्हें मालूम नहीं होगी । बाद को शादी हाँ जानें पर सपत्नीक सुबह अपने घर चले जाना ।”

नवकुमार इससे सम्मत हुए। इस अवस्था में जहाँ तक सम्भव है, वहाँ तक शास्त्रानुकूल काम हुआ। गोधूलि-लग्न में नवकुमार के साथ कापालिक-पालिता संन्यासिनी का विवाह हुआ।

कापालिक का कोई संवाद नहीं मिला। दूसरे दिन सुबह तीनों आदमी यात्रा का उत्सोग करने लगे। अधिकारी मेदिनीपुर के गस्ते तक उन्हें छोड़ आयेंगे।

चलने के समय कपालकुण्डला कालीजी के दर्शन करने गई। भक्तिभाव से प्रणाम कर पुष्पपात्र से एक अभिन्न चित्रपत्र प्रतिमा के पद पर स्थापित कर एक दृष्टि से प्रतिमा का देवती रही, पत्र गिर गया।

कपालकुण्डला बड़ी भक्तिपरायणा थीं। प्रतिमा के पद से चित्रपत्र गिर गया, देव्यकर डरीं। यह संवाद उन्होंने अधिकारी को दिया। अधिकारी भी उदास हो गये। बोलें, “अब कोई उपाय नहीं। अब पति ही तुम्हारा धर्म है। पति अगर श्मशान गया तो तुम्हें भी साथ-साथ जाना होगा। इसलिए चुपचाप चलो।”

सब चुपचाप चल दिये। काफ़ी दिन चढ़ आने पर मेदिनीपुर की गह पर आये। वहाँ से अधिकारी विदा हुए। कपालकुण्डला रोने लगीं। संसार में जो एक मात्र उनका मुहूर्त था, वह विदा हो रहा है।

अधिकारी भी रोने लगे। आँखों से आँसू पोंछकर कपालकुण्डला के कान में कहा, “माँ, तू जानती है, परमेश्वरी के प्रसाद से तेरे पुत्र का अर्थ का अभाव नहीं। डिजली के छोटे-बड़े सभी उन्हें भेट चढ़ाते हैं। तेरी साड़ी में जो कुछ बाँध दिया है मैंने, उसे अपने पति को देकर किराये पर पाल्की कर देने के लिए कहना—पुत्र की तरह याद रखना।”

अधिकारी यह कहकर रोते हुए गये। कपालकुण्डला भी रोती हुई चलीं।

दूसरा खण्ड

पहला परिच्छेद

राजपथ पर

*“ There --now lean on me :
Place your foot here ——— —”*

— Manfred.

किस्मी लेखक का कहना है, “आदमी का जीवन काव्य-विशेष है।” कपालकुण्डला के जीवन-काव्य का एक सर्ग समाप्त हुआ। बाद क्या होगा ?

नवकुमार ने मेदिनीपुर आकर अधिकारी के दिये धन के बल से कपालकुण्डला के लिए एक दासी, एक रक्तक और पात्की-कहार करके, उन्हें शिविका पर भेज दिया। धन कम होने के कारण स्वयं पैदल चले। पिछले दिन की मिहनत से नवकुमार थक गये थे। दुपहर के भोजन के बाद कहार उन्हें बहुत पीछे छोड़ गये। क्रमशः सन्ध्या हुई। शीतकाल के बादलों के टुकड़ों से आकाश ढँक गया है। सन्ध्या भी बीत चुकी है। पृथिवी अन्धकारमयी हो गई। बूँद-बूँद बारिश भी होने लगी। नवकुमार कपाल-कुण्डला के साथ मिलने की जल्दी करने लगे। मन ही मन निश्चय था कि पहली सगाय में उनसे मुलाकात होगी। लेकिन सगाय में मुलाकात नहीं हुई। प्रायः चार-छः दण्ड रात बीत गई। नव-कुमार जल्द-जल्द कदम उठाते हुए चले। अकस्मान् किसी कठिन

द्रव्य पर उनका पैर पड़ा। पैर पड़ने से वह वस्तु चगचराती हुई टूट गई। नवकुमार खड़े हुए। फिर चले। फिर वैसा ही हुआ। पैर में लगी वस्तु को हाथ में उठाया। देखा, वह वस्तु टूटे तख्ते की तरह की है।

आकाश में घों से ढँका होने पर भी प्रायः ऐसा अँधेरा नहीं होता कि खुली जगह एक स्थूल वस्तु का अवयव न देख पड़े। सामने एक बड़ी वस्तु पड़ी थी; नवकुमार ने टटोलकर समझा, वह एक बड़ी पात्की है। साथ ही उनके हृदय में कपालकुण्डला की विपत्ति की शंका हुई। शिविका की तरफ जाने हुए पुनः एक दूसरे प्रकार के पदार्थ में उनका पैर लगा। यह स्पष्ट कोमल मनुष्य-शरीर के स्पर्श-सा लगा। बैठकर हाथ फेरकर देखा, मनुष्य-शरीर ही है। स्पर्श बड़ा शीतल; इसके साथ किमी गीली चीज का स्पर्श मालूम दिया। नन्ज देखी, गतिहीन थी। प्राण निकल गये हैं। मन का विशेष रूप से एकाग्र कर देखा, जैसे साँस चलने की आहट मिल रही है। साँस चल रही है, पर नन्ज नहीं मिलती, ऐसा क्यों? क्या यह रोगी है? नाक के पास हाथ ले जाकर देखा, साँस नहीं चल रही थी। फिर आवाज कैसी? मुमकिन, कोई जिन्दा आदमी भी यहाँ हो, यह सोचकर पूछा, “यहाँ कोई जिन्दा आदमी है?”

मृदु स्वर से उत्तर हुआ, “है।”

नवकुमार ने पूछा, “तुम कौन हो?”

उत्तर आया, “तुम कौन हो?” नवकुमार के कानों में स्त्री-कण्ठ का स्वर मालूम दिया। व्यग्र होकर पूछा, “क्या कपाल-कुण्डला हो?”

स्त्री ने कहा, “कपालकुण्डला कौन है, यह तो नहीं जानती, मैं पथिक हूँ, फिलहाल डाकुओं के हाथ निष्कुण्डला हो रही हूँ।”

व्यङ्ग्य सुनकर नवकुमार कुछ प्रसन्न हुए। पूछा, “क्या हुआ है ?”

उत्तर देनेवाली ने कहा, “डाकुओं ने मेरी पाल्की तोड़ दी है, मेरे एक कहार को मार डाला है और सब भाग गये हैं। डाकू मेरी देह के अलंकार सब लेकर मुझे पाल्की से बाँध गये हैं।”

अंधेरे में बढ़कर नवकुमार ने देखा दरअसल एक स्त्री पाल्की के साथ कपड़े से मजबूत बाँधी हुई है। नवकुमार ने जल्द-जल्द उसके बन्धन खोल और पूछा, “क्या तुम उठ सकती हो ?” स्त्री ने कहा, “मुझे भी लाठी का एक बार लगा है, इसलिए पैर में दर्द है, परन्तु जान पड़ता है, कुछ मदद करने पर उठ सकूँगी।”

नवकुमार ने हाथ बढ़ा दिया। पकड़कर रमणी उठी। नवकुमार ने पूछा, “क्या चल सकोगी ?”

स्त्री ने जवाब न देकर पूछा, “आपके पीछे कोई पथिक आ रहा है—आपने देखा है ?”

नवकुमार ने कहा, “नहीं।”

स्त्री ने फिर पूछा, “चट्टी कितनी दूर होगी ?”

नवकुमार ने कहा, “कितनी दूर होगी, नहीं बता सकूँगा। परन्तु जान पड़ता है, निकट है।”

स्त्री ने कहा, “अंधेरे में अकेली मैदान में बैठी क्या करूँगी, आपके साथ चट्टी तक जाना ही उचित है। जान पड़ता है, किसी पर किसी तरह का सहारा करने का मिले, तो चल सकूँगी।”

नवकुमार ने कहा, “विपत्ति के समय संकोच करना मूर्ख का काम है। मेरे कन्धे का सहारा लेकर चलो।”

स्त्री ने मूर्खता का काम नहीं किया। नवकुमार के कन्धे पर ही भार देती हुई चली।

मचमुच ही चट्टी पाम थी। इन दिनों में चट्टी के पास भी ऐसी दुष्क्रियाएँ करने डाकू हिचकते नहीं थे। ज्यादा देर किये बिना नवकुमार अपनी साथ वाली को साथ लेकर वहाँ पहुँचे।

नवकुमार ने देखा, उस चट्टी में कपालकुण्डला ठहरी हुई थीं। उनके नौकरों ने उनके लिए एक कमरा ले लिया था। नवकुमार अपनी सङ्गिनी के लिए उसके बगलवाला कमरा किराये कर उसमें उन्हें ले गये। उनकी आज्ञा के अनुसार मालिक-मकान की स्त्री वहाँ दीपक जला कर ले आई। जब दीपक की किरणें उनकी सङ्गिनी पर पड़ीं, तब नवकुमार ने देखा, वे असामान्य सुन्दरी हैं। रूपराशि की तरङ्ग में उनकी यौवन-शोभा सावन की नदी की तरह छापकर छलक रही थी।

दूसरा परिच्छेद

सराय में

“क्वैपा योपिन् प्रकृतिचपला ।”

—उद्धवदूत ।

यदि ये रमणी निष्कलंक-सुन्दरी होतीं, तो हम कहते, हे पुरुष-पाठक ! ये आपकी गृहिणी की तरह सुन्दरी हैं और सुन्दरी पाठिका ! ये दर्पण में पड़ी आपकी छाया की तरह सुन्दरी हैं तो रूप-वर्णना की हद हो जाती । दुर्भाग्य से ये सर्वाङ्गसुन्दरी नहीं, इसलिए निगम होना पड़ा ।

ये सर्वाङ्गसुन्दरी नहीं, यह कहने का कारण यह है कि पहले तो इनकी देह मफोले कद से कुछ लम्बी है, दूसरे होठ कुछ दबे हुए हैं, तीसरे सही मानी में ये गोरी नहीं ।

देह कुछ लम्बी है ज़रूर, परन्तु हाथ, पैर, हृदय आदि कुल अङ्ग सुन्दर और सम्पूर्ण हैं । वर्षाकाल में जैसे विटपी-लता अपने पत्रों के बाहुल्य से लहराया करती है, इनकी देह उम्मी तरह अपनी सम्पूर्णता से टलमल कर रही थी । इसलिए कुछ लम्बी देह भी पूर्णता के कारण अधिक शोभा धारण किये हुए थी । जिन्हें सही सही गोरी कहते हैं, उनमें किमी का रङ्ग पूरे चाँद की कौमुदी जैसा होता है, किमी-किमी का कुछ ललाई लिये हुए ऊपा जैसा । इनका रङ्ग इन दोनों से जुड़ा है । इसलिए इन्हें सही-सही गोरी नहीं कहा, परन्तु मृग्य करनेवाली शक्ति में इनका रङ्ग घटकर भी नहीं । ये श्यामवर्णा हैं । “श्यामा मा” या “श्यामसुन्दर” जिस श्याम-

वर्ण के उदाहरण हैं, यह वह श्यामवर्ण नहीं, तपे मोने का जो श्याम रङ्ग है, यह वही श्याम है। पूर्ण चन्द्र की किरण-लम्बा अथवा स्वर्ण-मेघ का किरीट पहने हुए ऊपा यदि गौराङ्गियों के वर्ण की प्रतिमा हों, तो वसन्त में निकले, आम के नये कोपला की शोभा इस श्यामा के वर्ण के अनुरूप कही जा सकती है। पाठक-महा-शयों में बहुतेरे गौराङ्गी के रङ्ग की प्रतिष्ठा कर सकते हैं, परन्तु यदि कोई ऐसी श्यामा के मन्त्र से मुग्ध हों तो उन्हें मैं रङ्ग के ज्ञान से रहित नहीं कह सकूँगा। इस प्रसङ्ग से जिन्हें नफ़्त हो, वे एक दफ़ा आम के नये कोपल और भोंगों-सी गोंगे ललाट पर पड़ी हुई अलकों सोचें। वे सप्रमी के चाँद-सी ललाट के नीचे अलकों को छूनेवाली भोंहिं याद करें; वे पके आम-से उज्ज्वल कपोल सोचें; उनके बीच गहरे-लाल छोटो-छोटो होंठ याद करें; तो यह न पहचानी हुई रमणी सुन्दरियों में भी सुन्दरी मालूम देगी। दोनों आँखें बहुत बड़ी नहीं, परन्तु बासी टेढ़ी पल्लव की रेखावाली हैं और बहुत ही चमकीली। उनके कटाक्ष स्थिर हैं अथच मर्मभेदी। तुम पर निगाह पड़ने पर तुम उसी वक्रत समझने लगोगे कि यह स्त्री तुम्हारा मन तक देख रही है। देखते-देखते उस मर्मभेदी दृष्टि में दूसरा भाव उठता है, आँखें मुकोमल स्नेह-रस में डूब जाती हैं। फिर कभी उनमें मुख के आवेश से पैदा हुआ केवल क्लान्ति का प्रकाश रहता है, जैसे वे आँखें मन्मथ की म्वप्नशय्या हों। कभी लालसा से स्फागित होकर मदन-मद से डगमगाती रहती हैं। फिर कभी चपल कोरों में क्रूर कटाक्ष होता है, जैसे बादल में बिजली। मुख की कान्ति में दो अनिर्वचनीय शोभाएँ हैं; पहली, सब जगह जानेवाली वृद्धि का प्रभाव; दूसरी महती आत्म-गरिमा। इन कारणों से जब वे अपनी मराल-प्रीवा टेढ़ी कर खड़ी होती हैं, तब सहज ही मालूम देता है, ये रमणियों की रानी हैं।

सुन्दरी की उम्र सत्ताईस साल की है—भादों की भगी नदी। भादों के महीने की नदी के जल की तरह इनकी रूप-राशि टलमल कर रही है—छापें पड़ रही हैं। रङ्ग से, आँखों से, सबसे इस खूबसूरती का भगव आकर्षक है। पूरी जवानी के भार से सारी देह सदा कुछ चपल रहती है बिना हवा के नई शरन की नदी जैसे कुछ चपल रहती है, वैसे ही चपल; वह चपलता बार बार नई नई शोभा धारण करने की वजह से है। नवकुमार बिना पलक मारे वह नई नई शोभा देख रहे थे।

नवकुमार की आँखें अनिमेष हैं, देखकर सुन्दरी ने पूछा, “आप क्या देख रहे हैं ? मेरा रूप ?”

नवकुमार भलमानस है; अप्रतिभ होकर सर झुका लिया। नवकुमार को निरुत्तर देखकर अपरिचिता फिर हँसकर बोली, “आपने क्या कभी स्त्री नहीं देखी ? या आप मुझे बड़ी सुन्दरी सोच रहे हैं ?”

सहज भाव से यह बात कही जाती तो तिरस्कार-जैसी मालूम देती, परन्तु रमणी ने जिस मजाक में कहा, वह व्यङ्ग्य के सिवा और कुछ नहीं जान पड़ा। नवकुमार ने देखा, यह बड़ी सुन्दरा है। सुन्दरा की बात का क्यों जवाब न दिया जाय ? उन्होंने कहा, “मैंने स्त्री देखी है, परन्तु ऐसी सुन्दरी नहीं देखी।”

रमणी ने मगर्व पूछा, “एक भी नहीं ?”

नवकुमार के हृदय में कपालकुण्डला का रूप जग रहा था; उन्होंने भी मगर्व कहा, “एक भी नहीं, ऐसा नहीं कह सकता।”

पत्थर पर लोहे की चोट पड़ी। उत्तरकाशिणी ने कहा, “फिर भी अच्छा है। वह क्या आपकी गृहिणी है ?”

नव—क्यों, गृहिणी क्यों समझ रही हो ?

स्त्री—बङ्गाली अपनी गृहिणी को सब से सुन्दरी देखते हैं।

नव०—मैं बङ्गाली हूँ; आप भी तो बङ्गाली की जैसी बातचीत कर रही हैं; आप और किस देश की हैं ?

युवती अपने पहनावे की ओर नज़र डालकर बोली, “यह बदकिस्मत, बङ्गालन नहीं है, पछाँह की मुसलमानिन है।” नवकुमार ने अच्छी तरह देखा, पहनावा सही सही पछाँह की मुसलमानिन-जैसा है, परन्तु बैंगला ठेठ बङ्गालिन जैसी बोल रही है। कुछ देर बाद तरुणी कहने लगी, “महाशय, वाचैदेव्य में मेरा परिचय आपने लिया, अब अपना परिचय देकर चर्चितार्थ कीजिये। जिस गृह में वह अद्वितीया रूपवती गृहिणी है, वह गृह कहाँ है ?”

नवकुमार ने कहा, “मैं सप्रश्राम रहता हूँ।”

विदेशिनी ने कोई उत्तर नहीं दिया। एकाएक वह मुँह भुकाकर दिया जगाने लगी।

कुछ देर बाद मुँह बिना उठाये बोली, “आदिमा का नाम माती है। जनाव का इस्मशरीफ ?”

नवकुमार ने कहा, “मुझे नवकुमार शर्मा कहते हैं।”

दिया गुल हो गया।

—

तीसरा परिच्छेद

सुन्दरी-दर्शन में

“————धरो देवि मोहन मूर्ति, देहो आज्ञा, साजाइ आ
वर वपु, आनि नाना आभरण ।”

—मेघनादवध

मकान की मालकिन को बुलाकर नवकुमार ने दूसरा दिया लाने के लिए कहा। दूसरे दिये के आने से पहले एक लम्बी साँस उन्होंने सुनी। दिया लाने के कुछ देर बाद नौकर-जैसा एक मुसलमान आया। उसे देखकर विदेशिनी ने कहा, “यह क्या, तुम लोगों को इतनी देर क्यों हुई? और सब कहाँ हैं?”

नौकर ने जवाब दिया, “कहार सब दारू पिये हुए मतवाले हो रहे थे। उन्हें इकट्ठा करके लाते हुए हम लोग पात्की के पीछे रह गये थे। बाद को टूटी पात्की देखकर और आपको न देख हमारे हाश ही उड़ गये थे। कुछ अभी वहीं हैं; कुछ आपकी गोज में इधर-उधर गये हैं। मैं यहाँ तलाश करने आया हूँ।”

माती ने कहा, “उन्हें ले आओ।”

नौकर सलाम करके चला गया। विदेशिनी कुछ देर तक गाल हथेली पर लिये बैठी रहीं।

नवकुमार ने विदा माँगी। तब माती स्वप्न देखकर उठी हुई-जैसे खड़ी होकर पहले के भाव से बोली, “आप कहाँ रहेंगे?”

नव०—इसके बाद ही वाले कमरे में।

मेती—आपके उस कमरे के पास एक पास्की देगी है। क्या आपका कोई साथी भी है ?

नव०—मेरी स्त्री साथ है।

मेती बीबी को फिर व्यङ्ग्य का अवकाश मिला। पृछा,
“वही क्या बेजोड़ खूबसूरत हैं ?”

नव०—देखने पर समझिएगा।

मेती—क्या देख सकती हैं ?

नव०—(सौचकर) क्या हानि ?

मेती—तो जरा कृपा कीजिए। अद्वितीया रूपवती का देखने का बड़ा कौतूहल हो रहा है। आगे जाकर कहना चाहती हूँ। परन्तु अभी नहीं; अभी आप जाइए। कुछ देर बाद मैं आपको संवाद दूँगी।

नवकुमार चल गये। कुछ देर बाद बहुत में आदमी, नौकर-नौकरानियाँ, और कहाँ सन्दूक वगैरह लिये हुए आकर हाजिर हुए। एक पास्की भी आई; उसमें एक नौकरानी थी। बाद को नवकुमार के पास खबर आई कि बीबी ने याद किया है।

नवकुमार मेती बीबी के पास फिर आये। देखा, इस बार दूसरा रूप है। पहला पहनावा उतार कर मेती बीबी ने मेती और सोने के तरह-तरह के कामवाले जेवर और वस्त्र पहने हैं। बिना आभरण की देह को आभरणों से खचित किया है। जहाँ जहाँ कुछ अटैता है—कुन्तल में, कवरी में, कपाल में, कंगों में, कानों, गले में, हृदय में, बाहों में, सब जगह सोने के भीतर से हीरे आदि रत्न झुलस रहे हैं। नवकुमार की आँखें अस्थिर हुईं। ज्यादातर आरते सोने के ज्यादा गहने पहन लेने पर अक्सर कुछ बदसूरत नजर आने लगती हैं; परन्तु मेती बीबी की वैसी श्रीहीनता या वैसी दशा नहीं देख पड़ती थी। अधिकाधिक नक्त्यों की माला से भूषित

आकाश की तरह मधुर और आर्यत देह के साथ अलंकारों की बहुलता सुसज्जत मानस देने लगी, वस्तुि उनसे सुन्दरता की प्रभा और बढ़ गई। मोती बीबी ने नवकुमार से कहा, “महाशय, चलिए, आपकी पत्नी से परिचित हो आऊँ।” नवकुमार ने कहा, “इसके लिए गहने पहनने की आवश्यकता नहीं थी, मेरी स्त्री के कोई गहना नहीं।”

मोती बीबी—समझिए, गहने दिखाने के लिए पहने हैं। स्त्रियों के गहने होने पर विना दिखाये नहीं रह सकतीं। अच्छा, चलिए।

नवकुमार मोती बीबी के साथ ले चलें। जो नौकरानी पान्की पर चढ़कर आई थी, वह भी साथ चली। इसका नाम पेशमन है।

कपाल-कुण्डला उम मरायवाले कमरे के गीले फर्श पर अकेली बैठी थीं। सिर्फ एक टिमटिमाता हुआ दिया जल रहा था। न-बैधी बनी केशरगशि पीछे अधेरा किये हुए थी। मोती बीबी ने जब पहल-पहल उन्हें देखा तब हाठों में और कोंगों में जरा मुस्किरा-हट खुली। अच्छी तरह देखने के लिए दिया उठाकर कपाल-कुण्डला के मुँह के पास ले आई। तब वह मुस्किराहट वाला भाव दूर हो गया: मोती का मुँह गम्भीर हुआ: एकटक देखती रही। कोई कोई बात नहीं करती: मोती मुग्ध है: कपाल-कुण्डला कुछ विस्मिता।

कुछ देर बाद मोती अपने अङ्गों से अलंकारगशि ग्वालने लगीं। अपने अङ्ग से गहने ग्वाल-ग्वालकर मोती कपालकुण्डला को पहनाने लगीं। कपालकुण्डला कुछ नहीं बोलीं। नवकुमार कहने लगे, “यह क्या हो रहा है?” मोती ने इसका कोई जवाब नहीं दिया।

गहने ज्यों के त्यों पहनाये जा चुकने पर, मोती ने नवकुमार से कहा, “आपने सच कहा था। यह फूल राजों की फुलवाड़ी में भी नहीं खिलता। अफसोस यह है कि यह रूपगशि मैं राजधानी में नहीं दिखा सकी। ये सब अलंकार इन्हीं अङ्गों के योग्य हैं, इसी

लिए पहना दिये । आप भी कभी-कभी पहनाकर मुखर विदेशिन की याद कीजिएगा ।”

नवकुमार चकित होकर बोले, “यह क्या ! ये तो बहुत कीमती गहने हैं । ये सब लूंगा भी क्यों ?”

“ईश्वर के प्रसाद से मेरे और भी हैं । मैं निराभरणा नहीं हूँगी । इसे पहनाकर अगर मुझे मुख होता हो तो आप अड़चन क्यों डालते हैं ?” यह कहकर मोती वीवी दूधारी के साथ चली गई । एकान्त में आने पर पेशमन ने मोती वीवी से पूछा, “वीवी, यह आदमी कौन था ?”

यवनवाला ने जवाब दिया, “मेरा ब्रह्म ।”



चौथा परिच्छेद

शिविका पर

“.....खुलितु सत्त्वरे,
कङ्कण, वलय, हार, मीथि, कण्ठमाला,
कुण्डल, नूपुर, काञ्ची ।”

—मेघनादवध ।

गहने की दशा क्या हुई, सुनो, कहता हूँ । गहने रखने के लिए मोती बीबी ने एक चाँदी-जड़ी हाथीदाँत की मन्दूकची भेज दी । डाकू उनकी थोड़ी ही सामग्री लूट सके थे । उनके पास जो कुछ था, उसके अलावा और कुछ नहीं मिला ।

दो थान गहने कपाल-कुण्डला के वदन में रखकर बाकी सब नवकुमार ने उसी मन्दूकची में रख दिया । दूसरे दिन सुबह को मोती बीबी बर्दवान की तरफ और नवकुमार सपत्नीक सप्तग्राम की तरफ चले । नवकुमार ने कपाल-कुण्डला को शिविका पर बैठा कर उसके साथ गहनों की मन्दूकची भी दी । कहाँ सहज ही नवकुमार को पीछे छोड़कर बड़े । कपालकुण्डला शिविका का द्वार खोलकर चारों ओर देखती हुई जा रही थी । एक भिखारी उन्हें देखकर भीख माँगता हुआ पात्की के साथ साथ चला ।

कपाल-कुण्डला ने कहा—“मेरे पास तो कुछ भी नहीं, तुम्हें क्या दूँ ?”

कपाल-कुण्डला की देह में जो दो थान गहने थे, उनकी तरफ उँगली उठाकर भिखारी ने कहा, “यह क्या कहती हो माँ, तुम्हारी देह पर हीरे-मोती हैं, तुम्हारे कुछ भी नहीं ?”

कपाल-कुण्डला ने पूछा, “गहने मिलने पर तुम खुश होगे ?”
 भिखारी कुछ तन्त्रजुब में पड़ा। भिक्कु की आशा अमित
 है। कुछ देर बाद बोला, “हूँगा क्यों नहीं ?”

अकपट हृदय से कुल गहनों की सन्दूकची भिक्कु के हाथ में
 कपाल-कुण्डला ने गव दी। बदन के गहने भी खोलकर दे दिये।

भिक्कु कुछ देर तक विह्वल रहा। दास-दामी कुछ भी नहीं
 मायूस कर सकें। भिक्कु का विह्वल भाव क्षणिक था। उम्मी
 वक्त वह इधर-उधर देखकर ऊँची साँम खींचकर गहने लेकर भागा।
 कपाल-कुण्डला ने कहा, “भिक्कु भागा क्यों ?”

—

पाँचवाँ परिच्छेद

स्वदेश में

शब्दागम्ये यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तान् ।

कर्णे लोलं कथयितुमभदाननस्पर्शलोभान् ॥

—मेघदूत

नवकुमार कपाल-कुण्डला को लेकर अपने देश पहुँचे । नव-कुमार के पिता नहीं थे, उनकी विधवा माँ घर में थीं, और दो बहनें थीं । बड़ी बहन विधवा थी, उससे पाठक महाशय का परिचय नहीं होगा । दूसरी श्यामासुन्दरी सधवा होकर भी विधवा थी, क्योंकि वे कुलीन की पत्नी थीं । वे दो-एक बार हमें दर्शन देंगी ।

यदि किसी दूसरी अवस्था में नवकुमार अज्ञात-कुलशीलवाली किसी तपस्विनी को व्याहक घर ले आते, तो उनके आत्मीय-स्वजन कहाँ तक खुश होते, हम नहीं कह सकते । लेकिन इस अवस्था में उन्हें दरअसल कोई दिक्कत नहीं सामने मिली । उनके आने के सम्बन्ध में सभी निराश्रय हो गये थे । उनके साथियों ने लौटकर यह घोषित किया था कि नवकुमार को बाघ पकड़ ले गया है । पाठक महाशय समझेंगे कि इन सत्यवादियों ने अपने विश्वास के अनुसार कहा था, लेकिन इतनी ही बात मान लेने पर उनकी कल्पना-शक्ति को नीचा दंगना पड़ता था; फलतः बाघ की बड़ाई पर कभी-कभी तर्क-वितर्क भी हुआ; किसी ने कहा, “बाघ आठ हाथ का होगा ।” किसी ने कहा, “नहीं प्रायः चौदह हाथ का ।”

पहले के परिचित प्राचीन यात्री ने कहा, “कुछ हो, मैं बहुत बचा । बाघ पहले मेरी ही तरफ झपटा था, मैं भागा । नवकुमार के उतनी हिम्मत नहीं थी, वह भाग नहीं पाया ।”

जब ये घटनाएँ नवकुमार की माँ-आदि ने सुनीं तब घर के भीतर ऐसी क्लाइ हुई कि कुछ गोज तक इसकी शान्ति नहीं हुई । इकलौते लड़के की मृत्यु के संवाद से नवकुमार की माँ एक बार ही मरणा-मन्न हो गई । ऐसे समय नवकुमार जब मस्त्रीक अपने घर पहुँचे, तब उनसे कौन पृछे कि तुम्हारी वह किम् जाति की है, किम्की लड़की है ? सभी मारे आनन्द के अन्धे हो गये ।

नवकुमार की माँ बड़े आदर से वह का वरण कर घर ले गई ।

जब नवकुमार ने देखा कि कपालकुण्डला उनके घर में आदर-पूर्वक ली गई तब उनके आनन्द का समुद्र उमड़ने लगा । अनादर के भय से कपालकुण्डला को पाकर भी किसी तरह का आह्लाद या प्रणय-लक्ष्ण उन्होंने नहीं जाहिर किया, अथ च उनके हृदय का आकाश कपालकुण्डला की मूर्ति में ही व्याप्त था । इसी आशंका से वे कपाल-कुण्डला के पाणि-ग्रहण के प्रस्ताव पर सम्मत नहीं हुए । इसी शंका से पाणिग्रहण करके भी घर पहुँचने तक कपाल-कुण्डला के साथ प्रेम-सम्भाषण नहीं किया । उमड़ते हुए अनुराग के सिन्धु में एक भी तरङ्ग विक्षिप्त होने नहीं दी । वह आशंका दूर हुई । जलराशि के बहाव में गति रोकनेवाले पत्थरों के दूर करने का जैसा अदम्य तरङ्गवेग पैदा होता है, वैसा ही वेग से नवकुमार का प्रेम-सिन्धु तरङ्ग लेने लगा ।

प्रेम का यह आविर्भाव मदा बातों से नहीं व्यक्त होता था, बल्कि नवकुमार कपालकुण्डला को देखते ही जैसे मजल लाचनों से उनके प्रति अनिमेष देखते रहते थे, उसी से प्रकाश पाता था; जिस तरह बिना जलरत के जलरत की कल्पना कर कपालकुण्डला के

पास आते थे, उससे जाहिर होता था; जिस तरह बिना प्रसंग के कपालकुण्डला के पास आते थे, उससे स्पष्ट होता था; जिस तरह बिना प्रसङ्ग के कपाल-कुण्डला का प्रसङ्ग छेड़ते थे, उससे प्रकाशित होता था; सदा अनमते भाव की सूचना देनेवाली चाल में सूचित था। उनकी प्रकृति तक बदलने लगी। जहाँ चापल्य था, वहाँ गम्भीरता आ गई; जहाँ अवसाद था, वहाँ प्रसन्नता पैदा हो गई; नवकुमार का मुँह सदा प्रफुल्ल रहने लगा। हृदय स्नेह का आधार हो जाने के कारण दूसरों के लिए भी स्नेह की अधिकता पैदा हुई। जिनमें नकरत थी, उनसे नकरत घट गई; हर आदमी प्रेम का पात्र बन गया। दुनिया केवल सत्कर्म के लिए रची गई है, मान्य देने लगा। मारा मंमार सुन्दर दिखने लगा। प्रणय ऐमा ही है। प्रणय कर्कश को मधुर कर देता है, असन को मत करता है, निष्पुण्यात्मा को पुण्यवान् बनाता है, अँधेरे को उजाला कर देता है।

और कपालकुण्डला ? उसका क्या भाव है ? चलो, पाठक, उसे देखें।

छठा परिच्छेद

अवरोध में

“किमित्यपास्याभरणानि यौवने
धृतं त्वया वार्धक्यशोभि वत्कलत्र ।
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका
विभावरी यद्यभूणाय कल्पते ॥”

—कुमारसम्भव ।

सब लोग जानते हैं कि पहले सप्तग्राम बड़ा समृद्धिशाली नगर था । एक वक्त, यत्रद्वीप से रोम तक सब देशों के वणिक् वाणिज्य के लिए इस महानगर में आकर मिलते थे । परन्तु मोलहवीं-सत्रहवीं सदी से सप्तग्राम का प्राचीन गौरव बट गया था । इसका मुख्य कारण यह है कि उस नगर के प्रान्त भाग का धोती हुई जो नदी बह रही थी, वह इस समय संकीर्ण-शरीर होती आ रही थी; इसलिए बड़े बड़े जहाज नगर तक नहीं जा पाते थे । इस कारण से वाणिज्य की बहुलता क्रमशः लुप्त होती आ रही थी । वाणिज्य का गौरव रखनेवाले नगर का वाणिज्य नष्ट होने पर सब कुछ नष्ट होता है । सप्तग्राम का भी सब कुछ गया । सत्रहवीं सदी में हुगली नये सौप्रव से उसकी प्रतियोगिनी होती जा रही थी । वहाँ पोर्तुगीज वाणिज्य का सूत्रपात करके सप्तग्राम की धनलक्ष्मी को आकर्षित कर रहे थे । परन्तु उस समय भी सप्तग्राम बिलकुल ही श्रीहत नहीं हुआ । वहाँ अब तक फौजदार आदि प्रधान राजपुरुषों

का वास था। परन्तु नगर का अधिकांश भाग श्रीहीन और वीरान होकर गाँव के रूप में बदल चुका था।

सप्तग्राम के एक निर्जन उपनगरवाले भाग में नवकुमार रहते थे। इस समय सप्तग्राम की उजड़ी हालत में वहाँ प्रायः मनुष्यों का समागम नहीं था। बड़े-बड़े गम्मे लतागुल्मादि से भर गये थे। नवकुमार के घर के पीछे ही एक चौड़ा बना वन था। मकान के सामने प्रायः आधे कौंस दूर पर एक नहर बहती थी। वह नहर एक छोटे प्रान्तर को बेरकर घर के पीछेवाले वन में होकर चली गई थी। मकान ईंटों का बना था। देशकाल की विवेचना करने पर उसे निहायत छोटा घर नहीं कह सकते थे। घर दुतल्ला था, परन्तु बहुत ऊँचा नहीं, इस समय अक्सर इकमञ्जिले की वैसी ऊँचाई देख पड़ती है।

इस मकान की छत पर दो नई उम्रवाली बियाँ खड़ी हुई चारों तरफ देख रही थीं। मन्थ्या आ गई थी। चारों ओर जो कुछ देख पड़ता था, वह आँखों को अच्छा लगनेवाला अवश्य था। पास ही एक तरफ बना वन है। उसमें असंख्य चिड़ियाँ कलरव कर रही हैं। दूसरी ओर छोटी-सी नहर चाँदी के सूत की तरह पड़ी हुई है। दूर महानगर की मौधमाला नये वासन्ती पवन के स्पर्श के लिए लोलुप नागरिकों से परिपूर्ण होकर शोभा पा रही है। दूसरी ओर बहुत दूर नावों के आभरणवाली भागीरथी के विशाल वल् पर मन्थ्या का अँधेरा क्रमशः गहरा होता जा रहा है।

जो दोनों नवीना छत पर खड़ी थीं, उनमें एक चन्द्रशेखर की प्रभावाली है, न-बँये केशों में प्रायः आधी छिपी; दूसरी कृशाङ्गी हैं, वे भी सुमुखी पोडशी हैं; वे छोटी देह छोटे से मुँहवाली हैं; मुँह का ऊपरवाला आधा हिस्सा चारों तरफ से घुँघराली लटों से घिरा हुआ है। जैसे नीले कमल के दल कमल के बिचले हिस्से

को घेरे हुए हैं। दोनों आँखें स्फागित हैं, कोमल, श्वेतवर्ण, मछलियाँ जैसी। अँगुलियाँ बहुत छोटी-छोटी, मझिनी की केशतर्जनों में खेल रही हैं। पाठक महाशय समझ गये हैं कि चन्द्रशिम शोभावाली कपालकुण्डला हैं, उनसे कह दें, कृशाङ्गी उनकी ननद श्यामासुन्दरी है।

श्यामासुन्दरी भावज को कभी 'वह', कभी आदर करके 'वदन', कभी 'मृणो'—सम्बोधन करती थीं। कपाल-कुण्डला नाम विकट था, इसलिए घरवालों ने उनका नाम मृणमयी रखवा था; इसी लिए 'मृणो' सम्बोधन है। हम भी अब कभी कभी इन्हें मृणमयी कहेंगे।

श्यामासुन्दरी वपचन में अभ्यस्त एक कविता पढ़ रही थीं। जैम—

“बले—पद्मरानी, वदनस्वानि, रते राखे ठेके।

फुटाय कलि छुटाय अलि, प्राणपतिके देखे ॥

आवाग—बनेर लता छड़िये पाता गाझेर दिके धाय।

नदीर जल नामले ढल, मागरते जाय ॥

छि छि—सगम टुटे कुमुद फटे चाँदेर आलां पेले।

वियेर कने राखते नारि फूलशय्या गेले ॥

मरि—ए कि ज्वाला विधिरे खेला, इषिये विपाद।

परपरशे सवाइ रसे भाङ्ग लजेर बाँध ॥”

(कहा है, पद्मरानी अपना मुँह रान को ढँक रखती है। कली खिलती है, अलि दौड़ता है, प्राणपति को देखती है (कली)। फिर वन की लता पत्तों फैलाकर पेड़ की तरफ दौड़ती है। नदी का पानी उतरने पर ढालू समुद्र में जाता है। छिः छिः—लाज तोड़कर कुमुद खिलती है चाँद का आलोक मिलने पर। व्याही हुई लड़की को हम रख नहीं सकते जब वह फूलशय्या पर जा चुकती है। मरती

हूँ—यह कैसी जलन है, विधाता का खेल, हर्ष में विपाद है। दूसरे के स्पर्श से सभी रस्में लाज का बन्धन तोड़ देती हैं।)

“क्योंगी, तू अकेली तपस्विनी रहेगी ?”

मृगमयी ने जवाब दिया, “क्यों कौन मी तपस्या कर रही हूँ ?”

श्यामासुन्दरी दोनों हाथों से मृगमयी की केशतगङ्ग-माला उठाकर बोली, “अपनी यह बालों की राशि क्या बाँधोगी नहीं ?”

मृगमयी ने केवल कुछ हँसकर श्यामासुन्दरी के हाथ से बालों को खाँच लिया।

श्यामासुन्दरी ने फिर कहा, “अच्छा, मेरी यह माध भी पूरी करा। एक बार हमारी गृहस्थ की बहू की तरह सजा, कितने दिन योगिनी रहेगी ?”

मृ०—जब ब्राह्मण-पुत्र से मुलाकात नहीं हुई तब तो मैं योगिनी ही थी।

श्या०—अब और नहीं रह सकोगी।

मृ०—क्यों नहीं रह सकूँगी ?

श्या०—क्यों ? देखोगी, तुम्हारा योग तोड़ दूँ ? पारस पत्थर किसे कहते हैं, जानती हो ?

मृगमयी ने कहा, “नहीं।”

श्या०—पारस पत्थर के छू जाने से लाहा भी सेना हो जाता है।

मृ०—उससे क्या हुआ ?

श्या०—स्त्री के भी पारस पत्थर है।

मृ०—वह क्या है ?

श्या०—पुरुष। पुरुष की हवा लगने पर योगिनी भी गृहिणी बन जाती है। तूने वही पत्थर छुआ है। देखना—

“बाँधिव चुलेर राश, पगव चिकन बाम,
स्वोपाय दोलाव तोर फूल ।

कपाले सीथिंग धार, कांकलेने चन्द्रहार,
काने तोर दिव जोड़ा दूल ॥

कुङ्कुम चन्दन चुआ, बाटा भरे पान गुआ,
राङ्गा सुख राङ्गा हवे रागे ।

सेनान पुत्तलि छेले, काले तोर दिव फेले,
देग्वि भाल लागे कि ना लागे ॥”

(तेरे वालों की राशि बाँधूँगी, चिकनी साड़ी पहनाऊँगी, तेरे जूड़े में फूल भुला दूँगी । ललाट पर माँग की धार, कमर में करधनी, तेरे कानों में एक जोड़ी भूमकें दूँगी । कुङ्कुम, चोआ-चन्दन और डब्बे भरे पान सुपागी ; लाल मुँह राग में लाल हो जायगा । सेने की पुतली लड़का तेरी गोद में डाल दूँगी; देखूँ, तूमे अच्छा लगता है या नहीं ।)

मृगमयी ने कहा, “अच्छी बात है, समझी । परम पत्थर जैसे हुआ, सेना हुडे, बाल बाँधे, अच्छी साड़ी पहनी, जूड़े में फूल लगाया, कमर में करधनी पहनी, कानों में भूमके भूमे, चन्दन, कुङ्कुम, चोआ पान, सुपागी, सेने की पुतली तक, मिला । मेराचो कि सब कुछ हुआ । यह होने पर भी क्या सुख है ?”

श्या०—कहाँ तो, फूल खिलने पर क्या सुख है ?

मृ०—अदमिये का देखने का सुख है, फूल का क्या ?

श्यामासुन्दरी की सुखकान्ति गम्भीर हुडे ; सुबह की हवा में नीले कमल-जैमी बड़ी-बड़ी आँखें कुछ डोलीं ; उन्होंने कहा, “फूल का क्या है, यह तो नहीं बत सकी । कभी फूल बनकर नहीं खिली; परन्तु अगर तुम्हारी हालत की कली मैं होती तो खिलकर सुख होता ।”

श्यामा कुलीन-पत्नी है।

हम भी इसी अवकाश में पाठक महाशय से कह रखें कि कला का खिलने में ही सुख है। पुष्प-रस और पुष्पगन्ध का वितरण ही उसका सुख है। आदान-प्रदान ही पृथ्वी के सुख का मूल है। तीमरा मूल नहीं। मृगमयी वन में रहकर यह भाव कभी हृदयङ्गम नहीं कर सकीं: इसलिए वान का कोई जवाब नहीं दिया।

उन्हें नीरव देवकर सुन्दरी ने कहा, "अच्छा, ऐसा अगर नहीं तो जरा सुनो—तुम्हारा सुख किसमें है?"

कुछ देर तक सोचकर मृगमयी ने कहा, "मैं नहीं कह सकती। जान पड़ता है, समुद्र के किनारे उन्हीं वनों में बिचरूँ तो मुझे सुख हो।"

श्यामासुन्दरी कुछ विस्मिता हुई। उन लोगों की खातिर से मृगमयी को उपकार नहीं पहुँचा, इससे कुछ क्रोध हुई। कुछ नागाज हुई। कहा, "अब लौट जाने का उपाय?"

मृ०—उपाय नहीं।

श्या०—तो क्या करोगी?

मृ०—अधिकारी कहते थे, "यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करेमि।"

श्यामासुन्दरी हँसती हुई, साड़ी हाँठों से लगाकर वाली, "जी हाँ, पण्डित जी, क्या हुआ?"

मृगमयी ने सोम छोड़कर कहा, "जो कुछ विधाता करायेंगे, वही करूँगी। जो कुछ भाग्य में है, वही होगा।"

श्या०—स्यों, भाग्य में और क्या है? भाग्य में सुख है। तुम लम्बी साँस क्यों छोड़ती हो?

मृगमयी ने कहा, "सुना। जिस दिन स्वामी के साथ चली, चलने के समय मैं भवानी के पदों पर त्रिपत्र रखने गई। मैं सो के पादपद्मों पर त्रिपत्र बिना दिये कोई काम नहीं करती थी। अगर

काम में शुभ होने को होता था तो माँ त्रिपत्र धारण कर लेती थीं। यदि अमङ्गल होने की सम्भावना होती थी, तो त्रिपत्र गिर जाता था। अजाने व्यक्ति के साथ अजाने देश में आने की शंका होने लगी। भला-बुरा जानने के लिए माँ के पास गई। माँ ने त्रिपत्र धारण नहीं किया ! अतएव भाग्य में क्या है, नहीं जानती।”

मृगमयी चुप हुई। श्यामामुन्दरी मिहर उठी।

—

प्रधान सहचरी बना दिया। लुत्कउन्निसा बेगम की सखी हुई, आँख आँट युवराज की कृपापात्री।

लुत्कउन्निसा जैसी बुद्धिमती महिला थोड़े ही दिनों में राजकुमार का हृदय अधिकृत कर लेगी, यह सहज ही समझ में आ सकता है। सलीम के चित्त पर उसका प्रभुत्व अप्रतिद्वन्द्वी हो गया। इस तरह कि समय आने पर लुत्कउन्निसा उनकी पटगनी होंगी, यह लुत्कउन्निसा की निश्चित प्रतिज्ञा हुई। केवल लुत्कउन्निसा की स्थिर प्रतिज्ञा हुई, ऐसी बात नहीं, सभी पुरवासियों को यह सम्भव मालूम दिया। ऐसी ही आशा के स्वप्न में लुत्कउन्निसा जीवन पार कर रही थीं, ऐसे समय नींद टूटी। शाह अकबर के खजानची, (एतमादुद्दौला) ख्वाजा गायाम की लड़की मेहरुन्निसा मुसलमान कुल की सबसे सुन्दरी है। एक दिन खजानची ने शाहजादा सलीम और दूसरे बड़े-बड़े व्यक्तियों को न्यूँता देकर अपने घर बुलाया। उसी दिन मेहरुन्निसा के साथ सलीम की मुलाकात हुई और उसी दिन सलीम मेहरुन्निसा को अपना दिल दे गये। इसके बाद जो कुछ घटा था, वह इतिहास पाठक मात्र को मालूम है। शेर अफगन नाम के एक बड़े बलवान् अमीर के साथ कोपाध्यक्ष की कन्या का सम्बन्ध पहले ही निश्चित हो चुका था। सलीम ने अनुराग में अन्ध होकर वह सम्बन्ध तोड़ देने के लिए पिता से प्रार्थना की। परन्तु निष्पक्ष पिता से केवल उन्हें निरम्कार मिला। फलतः सलीम को उस समय के लिए निरस्त होना पड़ा। निरस्त तो हुए, लेकिन आशा नहीं छोड़ी। शेर अफगन के साथ मेहरुन्निसा की शादी हो गई। परन्तु सलीम की चित्त-वृत्तियाँ लुत्कउन्निसा के नगदर्पण पर थीं, वे निश्चित रूप से समझ गई थीं कि शेर अफगन की हज़ार जानें भी हों, तो भी उसका निस्तार नहीं। अकबर शाह की मृत्यु होने पर उसका भी प्राणान्त होगा।

मेहरुन्निसा सलीम की महिषी होंगी। लुत्कउन्निमा ने मिंहासन की आशा छोड़ दी।

मुसलमान-सम्राट्-कुल-गौरव अकबर की आयु समाप्त हो आई। जिस प्रचण्ड सूर्य की प्रभा से तुरकिस्तान से ब्रह्मपुत्र तक प्रकाश फैला रहता था, वह सूर्य अस्तगामी हुआ। इस समय लुत्कउन्निमा ने अपने बड़प्पन की रक्षा के लिए एक दुस्साहसिक संकल्प किया।

राजपूतपति राजा मानसिंह की बहन सलीम की बड़ी रानी हैं। खुसरू उनका लड़का है। एक दिन उनके साथ अकबर शाह के पीड़ित शरीर के सम्बन्ध में लुत्कउन्निमा की बातचीत हो रही थी। राजपूत-कन्या इस समय बादशाह-पत्नी होंगी, इस प्रसंग पर लुत्कउन्निमा उनका अभिनन्दन कर रही थीं। जवाब में खुसरू की माँ ने कहा, "बादशाह की महिषी होने पर मनुष्य-जन्म सार्थक है मही, परन्तु जो बादशाह की माता हैं, वे सबसे ऊपर हैं।" उत्तर सुनते ही पहले की न मोची हुई एक अभिसन्धि लुत्कउन्निमा के हृदय में उठी। उन्होंने जवाब दिया, "वैसा ही क्यों न हो? वह भी तो आपकी इच्छा पर है। बेगम ने पूछा, "वह क्या?" चतुरा ने जवाब दिया, "युवराज के पुत्र खुसरू का मिंहासन पर बैठोइए।"

बेगम ने कोई जवाब नहीं दिया। उस रोज यह प्रसङ्ग फिर नहीं उठा। परन्तु कोई यह बात भूलों नहीं। पति की जगह पुत्र मिंहासन पर बैठे, यह बेगम का अनभिमत नहीं। मेहरुन्निसा के प्रति सलीम का अनुराग लुत्कउन्निमा के लिए जैसा हृदय का शेल है, बेगम के लिए भी वैसा ही है। मानसिंह की बहन आधुनिक तर्क लड़की की आज्ञानुवर्तिनी हो रहेंगी, वह अच्छे क्यों लगेगा? लुत्कउन्निमा का भी इस संकल्प में उद्योगिनी होने का गहरा तात्पर्य था। दूसरे दिन फिर यह प्रसंग उठा। दोनों का मत निश्चित हुआ।

सलीम को छोड़कर अकबर का खुसरू को सिंहासन पर बैठाना असम्भाव्य मालूम दे, ऐसा कोई कारण नहीं था। यह बात लूकउन्निसा ने बेगम के दिल में अच्छी तरह बैठा दी। उन्होंने कहा, “मोगलों का साम्राज्य राजपूतों के बाहुबल से स्थापित है; उस राजपूत जाति के चूड़ामणि राजा मानसिंह हैं, वे खुसरू के मामा हैं; और मुसलमानों में सबसे बड़े ख़ाँ आज़िम हैं, वे प्रधान मन्त्री हैं, वे खुसरू के ससुर हैं; ये दोनों व्यक्ति अगर उद्योग करेंगे तो कौन इनका अनुवर्ती नहीं होगा? और युवराज सिंहासन भी किसके बल से प्राप्त करेंगे? राजा मानसिंह का इस काम में व्रती करने का आप पर भार है। ख़ाँ आज़िम और दूसरे मुसलमान उमरा के इधर लाना मेरे जिम्मे। आपके आशीर्वाद से मैं कामयाब हूँगी, परन्तु एक आशंका है कि कहीं सिंहासन पर बैठकर खुसरू इस दुश्चरित्रिणी को पुर से बाहर न निकाल दें।”

बेगम अपनी सखी का अभिप्राय समझी। हँसकर कहा, “तुम आगरे में जिस अमीर की गृहिणी होना चाहोगी, वही तुम्हारा पण्डितप्रदण करेगा। तुम्हारे पति पंचहजारी मनसबदार होंगे।”

लूकउन्निसा खुश हुई। यही उनका उद्देश्य था। यदि राजपुरी में सामान्य पुरखी की तरह रहना पड़ा, तो प्रति पुष्प-विहारिणी मधुकरी के पंख काटने पर क्या सुख हुआ? यदि स्वाधीनता छोड़नी पड़ी तो बाल्यसखी मेहरुन्निसा के दामीत्व में क्या सुख हुआ? इसकी अपेक्षा किसी राजपुरुष की सर्वमयी गृहिणी होना गौरव का विषय है।

केवल इसी लोभ से लूकउन्निसा इस कर्म में प्रवृत्त नहीं हुई। सलीम उनकी अपेक्षा का मेहरुन्निसा के लिए इतने व्यस्त हैं, इसका बदला चुकाना भी उनका उद्देश्य है।

खाँ आजिम आदि दिल्ली के उमरा लुत्कउन्निसा के बहुत डी बाध्य थे। खाँ आजिम अपने दामाद की भलाई की ओर मुकेंगे यह विचित्र नहीं। वे तथा और-और उमरा सम्मत हुए; खाँ आजिम ने लुत्कउन्निसा से कहा, “सोचो, यदि किसी अमुयोग से हम लोग कृतकार्य न हों तो हमारी-तुम्हारी क्या नहीं। इसलिए जान बचाने का एक रास्ता रखना अच्छा है।”

लुत्कउन्निसा ने पूछा, “आपका क्या परामर्श है?” खाँ आजिम ने कहा, “उड़ीसा के अलावा दूसरा आश्रय नहीं। केवल वहीं मोगलों का शासन उतना प्रखर नहीं। उड़ीसा की सेना हमारे हाथ में रहे, यह जरूरी है। तुम्हारे भाई उड़ीसा के मनसबदार हैं। मैं कल प्रचार करूँगा कि वे लड़ाई में जरूरी हो गये हैं। तुम उन्हें देखने के बहाने कल ही उड़ीसा को रवाना हो जाओ। वहाँ जो कुछ करना है, वह करके जल्द लौट आओ।”

लुत्कउन्निसा इस परामर्श पर सम्मत हुई। वे उड़ीसा आकर जब लौट रही थीं, तब उनसे पाठक महाशयों की मुलाकात हुई है।



दूसरा परिच्छेद

दूसरे रास्ते

“जे माटीते पड़े लोके उठे ताइ धरे ।
बारेक निगाश होये केवा कोथा मरे ॥
तूफाने पतित किन्तु छाड़िब ना हाल ।
आजिके बिफल हलो, हते पारे काल ॥”

—नवीन तपस्विनी ।

जिस दिन नवकुमार को विदाकर मोती बीवी या लुत्कउन्निसा बर्दवान की ओर बढ़ीं, उस दिन वे बर्दवान तक पहुँच नहीं सकीं । दूमरी चट्टी में ठहरें । शाम को पेशमन के साथ एक जगह बैठे हुए बात चीत हो रही थी, ऐसे वक्त एकएक मोती ने पेशमन से पृथ्वा, “पेशमन ! मेरे पति को तुमने कैसा देखा ?”

पेशमन कुछ तअज्जुब में आकर बोली, “कैसा और देखूँगी ?”

मोती ने कहा, “सुन्दर पुरुष है या नहीं ?”

नवकुमार की तरफ से पेशमन को विशेष रूप से विराग हो गया था । जो गहने मोती ने कपाल-कुण्डला को दिये थे, उनकी तरफ पेशमन का विशेष लोभ था । मन में भरोसा था कि एक दिन माँग लूँगी । वह आशा निर्मूल हो गई थी; इसलिए कपाल-कुण्डला और उसके पति के प्रति उसकी बड़ी विरक्ति थी । स्वामिनी के प्रश्न का उत्तर दिया, “दरिद्र ब्राह्मण फिर सुन्दर और असुन्दर क्या ?”

मङ्गिनी के मन का भाव समझकर हँसते हुए मोती ने कहा, "दरिद्र ब्राह्मण अगर अमीर हो जाय तो सुन्दर पुरुष होगा या नहीं?"

पे०—वह फिर क्या?

मो०—क्यों तुम नहीं जानती, वेगम ने स्वीकार किया है कि स्वयंसे अग्न वादशाह हुए तो मेरे पहले स्वामी अमीर होंगे?

पे०—यह तो जानती हूँ, लेकिन तुम्हारे पहले पति अमीर क्यों होंगे?

मो०—फिर मेरे और कौन पति हैं?

पे०—जो नये होंगे।

मोती कुछ हँसकर बोली, "मेरी जैसी मनी के दो पति हुए तो बड़ी अन्याय की बात होगी"—"वह कौन जा रहा है?" पेशमन ने उसे पहचाना। वह आगरे के रहनेवाले था आज़िम का आश्रित व्यक्ति था। दोनों व्यस्त हुई। पेशमन ने उसे बुलाया। उस आदमी ने लज्जुन्निमा के सलाम कर एक पत्र दिया। कहा, "पत्र लेकर उड़ीसा जा रहा था। पत्र जरूरी है।"

पत्र पढ़कर मोती वीवी की आशा और भरोसे सब अन्तर्हित हो गये। पत्र का मर्म यह है :—

"हमारा प्रयत्न विफल हुआ। मृत्यु के समय भी अकबरशाह ने अपने बुद्धिबल से हमें परास्त किया है। वे परलोक सिधार गये हैं। उनकी आज्ञा से कुमार सलीम अब जहाँगीरशाह हुए हैं। तुम स्वयंसे के लिए उलभन में न पड़ो। इस मामले में कोई तुम्हारी दुश्मनी न कर सके, इसकी कोशिश के लिए तुम जल्द आगरा लौट आओ।"

अकबरशाह ने जिस उपाय से यह पड़्यन्त्र निष्फल किया था, वह इतिहास में लिखा है। इस जगह उस वर्णन की आवश्यकता नहीं।

पुरस्कार देकर दूत को विदाकर मोती ने पेशमन को पत्र सुनाया । पेशमन ने पूछा, अब उपाय क्या है ?

मोती०—अब और उपाय नहीं ।

पे०—(कुछ देर सोचकर) अच्छा है, क्या मुज्जायक़ा, जैसी थीं, वैसी ही रहोगी; मोगल-बादशाह की पुरखी भी दूसरे राज्य की पटरानी से बड़ी है ।

मोती०—(कुछ हँसकर) वैसा अब नहीं हो रहा । अब उस राजपुर में और नहीं रह सकूँगी । जल्द ही मेहरुन्निसा का जहाँगीर से निकाह होगा । मेहरुन्निसा को मैं उसके किशोरकाल से अच्छी तरह जानती हूँ । एक बार वह पुरवासिनी हुई तो वही बादशाह होगी । जहाँगीर बादशाह नाममात्र को रहेंगे । मैंने उनका सिंहासन पर चढ़ने का रास्ता गंका था, यह बात छिपी नहीं रहेगी । तब मेरी क्या दशा होगी ?

पेशमन प्रायः रोने को होकर बोली, “तो फिर क्या होगा ?”

मोती ने कहा, “एक भरोसा है । मेहरुन्निसा का चित्त जहाँगीर की तरफ से कैसा होगा ? जैसी उसकी दृढ़ता है, उससे यदि वह जहाँगीर के प्रति अनुरागिणी न होकर पति के प्रति यथार्थ स्नेहशालिनी हो, तो जहाँगीर शत ? शेर अफगन मारने पर भी मेहरुन्निसा को नहीं पायेंगे । और अगर मेहरुन्निसा जहाँगीर की सही अभिलाषिणी होगी, तो फिर कोई भरोसा नहीं ।”

पे०—मेहरुन्निसा का मन किम तरह समझोगी ?

मोती ने हँसकर कहा, “लुकुउन्निसा को असाव्य क्या है ? मेहरुन्निसा मेरी वाग्यसखी है, कल बर्दवान जाकर उसके यहाँ दो राज ठहरूँगी ।”

पे०—अगर मेहरुन्निसा बादशाह की अनुरागिणी नहीं हुई, तो क्या करोगी ?

मो०—पिता कहा करते हैं, “क्षेत्रे कर्म विधीयते ।”

देनों कुछ देर नीग्व रहीं । ईपन् हँसी से मोती के ओप्रा-
धर कुञ्चित होने लगे । पेशमन ने पूछा, “हँस क्यों रही हो ?

मोती ने कहा, “कोई नया भाव आ रहा है ।”

पे०—कैसा नया भाव ?

मोती ने वह पेशमन से नहीं कहा ।



तीसरा परिच्छेद

“श्यामादन्यो नहि नहि नहि प्राणनाथो ममास्ति ।”

इस समय शेर अरुगन वज्जाल के सूत्रदार के अधीन बर्दवान में एक महकम के अरुसर की हैसियत से रहते थे। मातीबीबी बर्दवान आकर शेर अरुगन के यहाँ पहुँची। शेर अरुगन ने सपरिवार बड़े समारोह से उन्हें टिकाया। जब शेर अरुगन और उनकी स्त्री मेहरन्निमा आगरे में रहते थे, तब मातीबीबी उनकी आँखों में विशेष परिचिता थीं। मेहरन्निमा से उनका वास स्नेह था। बाद को दोनों दिल्ली के मिहसिन के लिए प्रतियोगिनी हुई थीं। अब एक जगह होने पर मेहरन्निमा मन ही मन मोचने लगीं, “भारतवर्ष का कर्तृत्व विधाता ने किसके सर लिखा है? विधाता ही जानते हैं और मलीम जानते हैं और कोई और अगर जानती है तो यह लुत्कउन्निमा है। देखूँ, लुत्कउन्निमा क्या कुछ जाहिर नहीं करेगी?”

मेहरन्निमा उस समय, भारतवर्ष में प्रधान रूपवती और गुणवती थीं, ऐसी ख्याति पाई थी। सही-सही, वैसी रमणी भूमण्डल में थोड़ी ही पैदा हुई हैं। खूबसूरती में इतिहास-प्रसिद्ध सुन्दरियों में उनकी श्रेष्ठता ऐतिहासिक मात्र स्वीकार करते हैं। किसी प्रकार की विद्या में उस समय के पुरुषों में थोड़े भी उनसे ज्यादा जानकार शायद ही थे। नृत्यगीत में मेहरन्निमा अद्वितीया थीं। कविता रचने या चित्र-लेखन में भी वे सबका मन मोह लेती थीं। उनकी सरस बातें उनके भौन्दर्य से भी मोहमयी थीं। माती भी इन

गुणों में घटकर नहीं थीं। आज ये दोनों चमत्कारिणी एक दूसरी का मन जानने के लिए उत्सुक हुईं।

मेहरुन्निसा अपने खाम कमरे में बैठी हुई तस्वीर खींच रही थीं। मोती मेहरुन्निसा की पीठ के पास बैठी तस्वीर खींचना देख रही थी और पान चबा रही थी। मेहरुन्निसा ने पूछा, "तस्वीर कैसी बन रही है?" मोतीबीबी ने जवाब दिया, "तुम्हारी तस्वीर जैसी आती है, वैसी है। दूसरा कोई तुम्हारी तरह का चित्रण नहीं, यही दुःख है।"

मे०—यह अगर सच है तो दुःख की बात क्या है?

मो०—तुम्हारे जैसा दूसरा कोई चित्रण होता तो तुम्हारे इस मुख का आदर्श रख सकता था।

"कब्र की मिट्टी में इस मुख का आदर्श रहेगा।" मेहरुन्निसा ने ये बातें कुछ गम्भीरता से कहीं।

मे०—बहन, आज मन की सृष्टि की इतनी कल्पना क्यों है?

मे०—सृष्टि की कल्पना कहाँ? लेकिन तुम मुझे कल सुबह छोड़ जाओगी, यही मैं कैसे भूँ? दो रोज और रहकर तुम मुझे चरितार्थ क्यों नहीं करोगी?

मे०—मुख में किसकी असाध है? माध्य में अगर होता तो मैं क्यों जाती? परन्तु मैं दूसरे के अधीन हूँ, कैसे रहेगी?

मे०—मेरे लिए तम्हें अब प्यार तो और रहा नहीं, रहता तो तुम किसी तरह रह भी जाती। आई तो रह क्यों नहीं सकतीं?

मे०—मैंने तो सब बातें कह दी हैं। मेरे भाई मंगल की सेना में मत्सबदार हैं। वे उड़ीसा में पठानों से लड़ाई में घायल होकर संकटापन्न अवस्था में थे। मैं उन्हीं की विपत्ति का संवाद पाकर बेगम की आज्ञा से उन्हें देखने आई थी। उड़ीसा में बहुत

देर कर दी। अब और देर करना ठीक नहीं। तुमसे बहुत दिनों से मुलाकात नहीं हुई थी, इसलिए दो दिन रह जा रही हूँ।

मे०—वेगम के पास कितने दिन में पहुँचने की बात स्वीकार कर आई हो ?

माती समझी, मेहरन्निसा व्यङ्ग कर रही हैं। मार्जित अथच मर्मभेदी व्यङ्ग में मेहरन्निसा जैसी निपुण हैं, माती वैसी नहीं। परन्तु अप्रतिभ होनेवाली औरत भी नहीं। उन्होंने जवाब दिया, “दिन निश्चित करके तीन महीने का रास्ता पार करना सम्भव थोड़े ही है ? परन्तु काफ़ी देर कर दी है, और भी देर करने पर असन्तोष का कारण पैदा हो सकता है।”

मेहरन्निसा अपनी संसार को मोह लेनेवाली हँसी हँसकर बोलीं, “किम्के असन्तोष की आशंका कर रही हो ? युवराज के या उनकी रानी के ?”

माती कुछ अप्रतिभ होकर बोलीं, “इस लज्जाहीना को क्या और लजा रही हो ? दोनों का असन्तोष हो सकता है।”

मे०—परन्तु पूछती हूँ, तुम खुद वेगम नाम क्यों नहीं धारण करती ? सुना था, शाहजादा मलीम तुम्हें व्याहकर वास वेगम बनायेंगे, इसका कहाँ तक हुआ ?

मा०—मैं तो महज ही पराधीना हूँ। फिर भी जितनी स्वतन्त्रता है, उसे क्यों नष्ट करूँ ? वेगम की मङ्गिनी हूँ, इसलिए अनायास उड़ीसा आ सकी, मलीम की वेगमहोती तो क्या उड़ीसा आ सकती ?

मे०—जो दिल्लीश्वर की प्रधान महिषी होगी, उन्हें उड़ीसा आने की जरूरत ?

मा०—मलीम की प्रधान महिषी हूँगी, ऐसी स्पर्धा कभी नहीं करती। इस मुल्क हिन्दास्तान में अकेली मेहरन्निसा दिल्लीश्वर की प्राणेश्वरी होने के उपयुक्त है।

मेहरुन्निसा ने मुँह मुका लिया। बहुत देर तक निरन्तर रह-कर कहा, “बहन ! मैं ऐसा नहीं सोचती कि तुमने मुझे पीड़ा पहुँचाने के लिए ऐसा कहा, या मेरा मन समझने के लिए कहा। परन्तु तुमसे मेरी यह भीख है कि मैं शेर अफगन की बीबी हूँ और तन-मन-वाणी से उनकी दासी हूँ, यह भूलकर तुम बातचीत न करना।”

लाज से रहित मोती इस निश्कार से अप्रतिभ नहीं हुई। थक और भी उन्हें सुयोग मिला। कहा, “पति के साथ ही तुम्हारी जान है, यह मैं बहुत अच्छी तरह जानती हूँ। इसी लिए छल से यह प्रसङ्ग तुम्हारे सामने उठाने की हिम्मत की। सलीम अब तक तुम्हारे रूप का मोह भूल नहीं सके, यही बात कहना मेरा उद्देश्य था। सावधान रहना।”

मे०—अब समझी। परन्तु किस बात की आशंका ?

मोती कुछ इधर-उधर काँके वाली, “वैधव्य की आशंका।”

यह बात कहकर मोती मेहरुन्निसा के मुँह की तरफ तेज निगाह से देखती रही, परन्तु डर या आनन्द का कोई चिह्न वहाँ देखने को नहीं मिला। मेहरुन्निसा ने दर्प से कहा, “वैधव्य की आशंका ! शेर अफगन आत्म-गर्वा में अक्षम नहीं। तब से—अकबर बादशाह के राज्य में उनका पुत्र भी बिना कसूर दूसरे की जान लेकर नहीं बच सकेगा।”

मो०—यही है, परन्तु आगरे की हाल की खबर यह है कि बादशाह अकबर का शरीर नहीं रहा। सलीम मिहामन पर बैठे है। दिल्लीश्वर का दमन कौन करेगा ?

मेहरुन्निसा ने और कुछ नहीं सुना। उनके सारे अङ्ग थर-थराने लगे। फिर आँखें मुका लीं। आँखों से आँसुओं की धारा बहती रही। मोती ने पृच्छा, “राती क्यों हो ?”

मेहरुन्निसा ने साँस छोड़कर कहा, “सलीम भारत के सिंहासन पर हैं, मैं कहाँ ?”

मोती की कामना मिट्ट हुई। उन्होंने कहा, “तुम आज भी युवराज को विलकुल भूल नहीं सकीं ?”

मेहरुन्निमा ने गदगद स्वर से कहा, “किसे भूलूँगी ? अपना जीवन भूल जाऊँगी, फिर भी युवराज को नहीं भूलूँगी। परन्तु सुनो बहन ! अकस्मात् मन के कपाट खुल गये; यह बात तुमने सुन ली; परन्तु तुम्हें मेरी क्रमम है, यह बात जैसे दूसरे कानों में न जाय।”

मोती ने कहा, “अच्छा, ऐसा ही होगा। परन्तु जब सलीम सुनेंगे कि मैं बर्दवान आई थीं, तब वे अवश्य पछेंगे कि मेहरुन्निमा ने मेरी बातचीत क्या की, तब मैं क्या जवाब दूँगी ?”

कुछ देर मोचकर मेहरुन्निमा ने कहा, “यह कहना कि मेहरुन्निमा हृदय में उनका ध्यान करेगी। प्रयोजन होने पर उनके लिए अपनी जान भी देगी। परन्तु कभी अपने कुल की मर्यादा नहीं देगी। दाम्नी का पति जीवित रहते वह कभी दिल्लीश्वर को मुँह नहीं दिखायेगी। और अगर दिल्लीश्वर से उसके पति का प्राणान्त हो तो पति के हत्यारे से इस जीवन में उसके लिए मिलना अमम्भव है।”

यह कहकर मेहरुन्निमा उस जगह से उठ गई। मोतीबीबी चकित हो रही। परन्तु मोती बीबी की ही विजय हुई। मेहरुन्निमा के चित्त का भाव मोती बीबी ने समझ लिया। मोती बीबी की आशा-भंगमा मेहरुन्निमा कुछ भी नहीं मायूम कर पाई। जो वाद को अपनी बुद्धि के प्रभाव से दिल्लीश्वर की भी ईश्वरी हुई थीं, वे मोती बीबी से पराजिता हुई। इसका कारण यह है कि मेहरुन्निमा प्रणयशालिनी है, मोती बीबी यहाँ केवल स्वार्थपरायणा।

मनुष्य-हृदय की विचित्र गति मोती बीबी अच्छी तरह समझती थीं। मेहरुन्निमा की बातों की आलोचना कर उन्होंने जो सिद्धान्त

किया, समय पर वही घटित हुआ। वे समझीं कि मेहरुनिमा जहाँगीर की यथार्थ अनुगणिणी हैं इसलिए नागी-दर्प से इस समय जो कुछ भी कहें, रास्ता साफ होने पर वे मन की गति को रोक नहीं सकेंगी। बादशाह की इच्छा वे अवश्य सिद्ध करेंगी।

इस सिद्धान्त से मोती की आशा, भरोसे सब निर्मूल हो गये। परन्तु उससे मोती क्या बहुत दुखी हुई? ऐसा नहीं। बल्कि कुछ सुख का अनुभव भी हुआ। क्यों ऐसा असम्भव चिन्त-प्रसाद पैदा हुआ, यह मोती पहले समझ नहीं सकीं। वे आगरे के रास्ते चलीं। रास्ते में कुछ दिन बीते। उन्हीं कुछ दिनों में अपने चिन्त का भाव समझीं।

चौथा परिच्छेद

राज-निकेतन में

“पत्नीभावे आर तुमि भेवे ना आमारें ।”

—वीराङ्गना काव्य ।

मेती आगरा पहुँचीं । अब उन्हें मेती कहने की आवश्यकता नहीं । कुछ दिनों में उनकी सारी चिन्तवृत्तियाँ एक बार ही बदल गई थीं ।

जहाँगीर से उनकी मुलाकात हुई । जहाँगीर ने उन्हें पहले की तरह आदर देकर उनके भाई का संवाद और रास्ते का कुशल पूछा । लुत्कउन्निमा ने जो कुछ मेहरउन्निमा से कहा था, वह सत्य हुआ । दूसरे दूसरे प्रसङ्गों के बाद वर्दवान की बात सुनकर जहाँगीर ने पूछा, “मेहरुन्निमा के पास दो दिन थीं, कह रही हों, मेहरुन्निमा ने मेरी बात-चीत क्या की ?” लुत्कउन्निमा ने अकपट-हृदय से मेहरुन्निमा के अनुराग का परिचय दिया । बादशाह सुनकर नीरव हो रहे; उनकी स्फागित आँखों से दो-एक बूँद आँसू बहे ।

लुत्कउन्निमा ने कहा, “जहाँपनाह ! दासी ने शुभ संवाद दिया है । दासी के लिए अभी तक किसी पुरस्कार की आज्ञा नहीं हुई ।”

बादशाह ने हँसकर कहा, “बीबी ! तुम्हारी आकांक्षा अपरिमित है ।”

लु०—जहाँपनाह ! दासी का क्या दोष है ?

बाद०—दिल्ली के बादशाह को तुम्हारा गुलाम बना दिया है, और भी पुरस्कार चाहती हो ?

लुत्कउन्निसा ने हँसकर कहा, “बियों की बड़ी माध है।”

बाद०—फिर कौन सी माध हुई है ?

लु०—पहले बादशाह का हुक्म हो कि दासी की अर्ज सुनी जायगी।

बाद०—अगर राजकार्य में विघ्न न होता हो।

लु०—(हँसकर) एक के लिए दिल्लीश्वर के कार्य में विघ्न नहीं होता।

बाद०—तो मजूर है; माध कौन सी है, सुनूँ।

लु०—माध हुई है; एक व्याह करूँगी।

जहाँगीर खुलकर हँसे। कहा, “यह नये ढंग की माध जरूर है। कहीं सगाई पक्की हुई है ?”

लु०—मेरा तो हुई है। सिर्फ बादशाह के हुक्म की देर है। बादशाह की मर्जी न होने पर कोई भी सगाई पक्की नहीं।

बाद०—मेरी मर्जी की क्या जरूरत है ? किसे इस मुख के समन्दर में बहाने को सोचा है ?

लु०—दासी ने दिल्लीश्वर की सेवा की है, इसलिए द्विचरिणी नहीं। दासी अपने पति में ही व्याह करने की आज्ञा चाहती है।

बाद०—अच्छा ! इस पुराने नफर की दशा क्या होगी ?

लु०—दिल्लीश्वरी मेहरुन्निसा को दे जाऊँगी।

बाद०—दिल्लीश्वरी मेहरुन्निसा कौन ?

लु०—जो होगी।

जहाँगीर ने मन में निश्चय किया कि मेहरुन्निसा दिल्लीश्वरी होगी, यह लुत्कउन्निसा ने ध्रुव समझ लिया है। इस कारण से, अपना

मनोभिलाष विफल हुआ सोचकर विराग से राजावरोध से अवसर लेना चाहती हैं।

यह समझकर जहाँगीर दुःखित होकर नीरव रहे। लुत्फउन्निमा ने कहा, “बादशाह की क्या इस सम्बन्ध में सम्मति नहीं?”

बाद०—मेरी असम्मति नहीं। परन्तु पति से फिर व्याह करने की क्या जरूरत है?

लु०—भाग्य ऐसा था कि पहले व्याह के बाद पति ने पत्नी के रूप में ग्रहण नहीं किया। अब जहाँपनाह की दासी को त्याग नहीं सकेंगे।

बादशाह रहस्य से हँसकर फिर गम्भीर हो गये। बोले, “प्रेयसी, तुम्हें अदेय मेरा कुछ भी नहीं। तुम्हारी अगर वही प्रवृत्ति हो तो तम बेसा ही करो। परन्तु मुझे क्यों छोड़ जाओगी? एक आकाश में क्या चन्द्र-सूर्य दोनों नहीं रहते? एक वृन्त पर क्या दो फूल नहीं खिलते?”

आँखें फाड़कर बादशाह की तरफ देग्वते हुए लुत्फउन्निमा ने कहा, “छोटे फूल खिल सकते हैं, परन्तु एक मृणाल पर दो कमल नहीं खिलते। आपके रत्न-मिहामन के नीचे क्यों काँटा बनकर रहूँगी?”

लुत्फउन्निमा अपने आवास को चली गई। उनकी ऐसी इच्छा क्यों पैदा हुई, यह उन्होंने जहाँगीर से जाहिर नहीं किया। अनुभव से जैसा समझ में आता है, जहाँगीर वैसा ही समझकर चुप हो गये। गूढ़-तत्त्व कुछ नहीं समझे। लुत्फउन्निमा का हृदय पत्थर है। सलीम की नागी-हृदय को जीतनेवाली राजकान्ति भी कभी उनका मन नहीं मोह सकी। परन्तु इस बार पत्थर में भी कीट पैठ चुका था।

पाँचवाँ परिच्छेद

आत्म-मन्दिर में

“जनम अवधि हम रूप निहायल, नयन न तिगपित भेल ।
मे हो मधुग बेल स्रवनहि मृत्तल, मृत्तिपथ परम न भेल ॥
कत मधु जामिनि रभस गमाओल, न वृक्षल कैसन केल ।
लाख-लाख जुग हिय-हिय राखल, तइओ हिय जुड़ल न गेल ॥
कत विदग्ध जन रस अनुमोदइ, अनुभव काहू न पंग्व ।
'विद्यापति' कहै प्राण जुड़ायेत लागे न मिलल एक ॥”

लुत्फउन्निसा ने अपने आवास में आकर प्रफुल्ल मुख से पेशमन को बुलाकर वेशभूषण उतारे । सुवर्ण-मुक्तादि-स्वचित वसन परित्याग कर पेशमन से कहा, “यह पोशाक तुम लो ।”

सुनकर पेशमन कुछ विस्मित हुई । पोशाक बहुमूल्य है, अभी-अभी तैयार की गई है । कहा, “पोशाक मुझे क्यों ? आज की क्या खबर है ?”

लुत्फउन्निसा ने कहा, “अच्छी खबर है ।”

पे०—यह समझ रही हूँ । मेहरुन्निसा का भय क्या दूर हो गया है ?

लु०—दूर हो गया है । अब उस विषय की कोई चिन्ता नहीं ।

पेशमन ने अत्यन्त आह्लाद प्रकाश करके कहा, “तो अब मैं बेगम की दासी हुई ।”

लु०—तुम अगर बेगम की दासी होना चाहो तो मैं मेहरुन्निसा से कह दूँगी ।

पे०—मो क्या ? आप फरमा रही हैं कि मेहरुनिसा के लिए बादशाह की बेगम होने की कोई सम्भावना नहीं ।

लु०—ऐसी बात मैंने नहीं कही । मैंने कहा है, उस विषय में मुझे कोई चिन्ता नहीं ।

पे०—चिन्ता क्यों नहीं ? आप अगर आगरे की अकंली अधीश्वरी न हुई तो सभी वृथा हुआ ।

लु०—आगरे से सम्पर्क नहीं रखूँगी ।

पे०—यह क्या ? मैं तो कुछ भी नहीं समझ रही हूँ । आज की अच्छी खबर तो फिर क्या है, समझाकर कहिए ।

लु०—अच्छी खबर यह है कि मैं इस जीवन के लिए आगरा छोड़कर चली ।

पे०—कहाँ जाइएगा ?

लु०—बङ्गाल जाकर रहूँगी । डाँ सका तो किसी भले आदमी की बीबी हूँगी ।

पे०—ऐसा व्यङ्ग नया है सही, परन्तु मुनने पर प्राण काँप उठते हैं ।

लु०—व्यङ्ग नहीं कर रही । मैं मचमुच ही आगरा छोड़कर चली । बादशाह से दिदा ले आई हूँ ।

पे०—ऐसी कुप्रवृत्ति आपकी क्यों हुई ?

लु०—कुप्रवृत्ति नहीं । बहुत दिन आगरा घूमी, क्या फल हुआ ? सुख की प्यास बचपन से बड़ी प्रचल थी । उस प्यास को बुझाने के लिए बङ्गाल छोड़कर यहाँ तक आई । इस रत्न को खरीदने के लिए क्या धन नहीं दे डाला मैंने ? कौन सा दुष्कर्म नहीं किया ? और जिम्-जिम् उद्देश्य से यहाँ तक किया, उसका कौन-सा हाथ में भी नहीं आया ? ऐश्वर्य, सम्पद्, धन, गौरव, प्रतिष्ठा, सभी तो प्रचुर परिमाण में भोग किया । इतना करके भी क्या हुआ ?

आज यहाँ बैठकर कुल दिनों की मन ही मन गणना करके कह सकती हूँ कि एक दिन के लिए भी सुखी नहीं हुई, एक मुहूर्त के लिए भी कभी सुखभोग नहीं किया। कभी परितृप्त नहीं हुई। केवल तृप्णा बढ़ती है। कोशिश करने पर और भी सम्पद, और भी ऐश्वर्य प्राप्त कर सकती हूँ, परन्तु किस लिए? इन सब में अगर सुख होता तो इतने दिनों में एक दिन के लिए भी सुखी हुई होती। सुख की यह आकांक्षा पहाड़ी निर्भरिणी की तरह पहले निर्मल है। क्षीणधारा विजन प्रदेश से निकलती है, अपने गभ में ही छिपी रहती है, कोई जानता नहीं; अपने आप कलकल करती है, कोई सुनता नहीं। क्रमशः जितना चलती है, उतना देह बढ़ती है, उतनी पंकिल होती है। सिर्फ़ इतना ही नहीं, कभी फिर हवा बहती है, तरङ्गें उठती हैं, मगर-बड़ियाल आदि रहने लगते हैं। और भी देह बढ़ती है, जल और भी गँदला होता है, खारा होता है, अनगिनती भैरव चर रेगिस्तान जैसे नदी-हृदय में विराजते हैं, वेग मन्द पड़ जाता है, तब बड़ गँदला नदी-शरीर अनन्त समुद्र में कहाँ छिपता है, कौन कहेंगा?

पे०—मैं तो इसका कुछ भी अर्थ नहीं समझ सकी। इन सबसे तुम्हें सुख क्यों नहीं होता?

लु०—क्यों नहीं होता, यह इतने दिन बाद समझी हूँ। तीन साल राजप्रासाद की छाँह में बैठे हुए जो सुख नहीं हुआ, उड़ीसा से लौटते समय राह में वह सुख एक रात में हुआ है। इसी में समझी हूँ।

पे०—क्या समझी?

लु०—मैं इतने दिनों तक हिन्दुओं की देवमूर्ति जैसी थी। बाहर सुवर्ण-रत्नादि से खचित, भीतर पत्थर। इन्द्रिय-सुख की खोज में आग के भीतर विचरण किया है, कभी आग स्पर्श नहीं

किया। अब एक दफ़ा देखूँ, यदि पत्थर के भीतर खोजकर रक्तशिखरविशिष्ट एक अन्तःकरण पाऊँ।

पे०—यह भी तो कुछ समझ नहीं सकी।

लु०—इस आगरे में कभी किसी को मैंने प्यार किया है ?

पे०—(धीमी आवाज़ में) किसी को नहीं।

लु०—तो पत्थर की नहीं तो क्या ?

पे०—तो अब प्यार करने की तबियत हो तो प्यार क्यों नहीं करती ?

लु०—इच्छा तो है। इसी लिए आगरा छोड़कर जा रही हूँ।

पे०—इसकी क्या ज़रूरत है ? आगरे में क्या आदमी नहीं जो गवॉर-मृग्वों के देश जाओगी ? इस समय जो तुम्हें प्यार करते हैं, उन्हें क्यों नहीं प्यार करती ? रूप में कहो, धन में कहो, ऐश्वर्य में कहो, जिस तरह भी कहो दिल्ली के बादशाह से बड़ा पृथ्वी में कौन है ?

लु०—आकाश में चन्द्र-सूर्य रहते पानी अधोगामी क्यों है ?

पे०—क्यों है ?

लु०—किस्मत का लिखा !

लुक्कउन्निमा ने सब बातें ग्योलकर नहीं कहीं। पत्थर के भीतर आग पेट चुकी थी। पत्थर पिघल चला था।

छठा परिच्छेद

चरणतल में

“कायमनः प्राण आसि संपिब तेऽमारे ।

भुञ्ज आसि राजभोग दासीर आलये ॥”

—वीराङ्गना काव्य ।

क्षेत्र में बीज पड़ने पर आप अङ्कुर होता है । जब अङ्कुर होता है, तब कोई जान नहीं पाता—कोई देख नहीं पाता । परन्तु एक बार बीज रोपित होने पर, रोपणकारी जहाँ भी रहे, क्रमशः अङ्कुर से पेड़ तक सर उठाता रहता है । आज पौधा अंगुल भर का है मिरु, कोई देखकर भी नहीं देख पाता । क्रमशः पौधा बालिशत भर का, हाथ भर का, दो हाथ का हुआ; फिर भी अगर किसी की स्वार्थ-सिद्धि की सम्भावना न रही, तो कोई नहीं देखता, देखकर भी नहीं देखता । दिन जाते हैं, महीने जाते हैं, वर्ष जाते हैं, क्रमशः उस पर आँखें पड़ती हैं । फिर मन न देनेवाली बात नहीं रहती,—क्रमशः पेड़ बड़ा होता है, उसकी छाँड़ में दूसरे पेड़ कमजोर होते हैं, यहाँ तक कि क्षेत्र में दूसरा पौधा नहीं रहता ।

लृप्तकउन्निमा का प्रणय इसी तरह बढ़ा था । पहले एक दिन अकम्मान प्रणयभाजन से मुलाकात हुई, तब प्रणय-सञ्चार विशेष रूप से नहीं समझ सकी । लेकिन तभी अङ्कुर रह गया । इसके बाद फिर मुलाकात नहीं हुई । परन्तु आँख-ओट वही मुँह बार-बार याद आने लगा, स्मृतिपट पर उस मुख को चित्रित करना कुछ-कुछ सुखकर मालूम देने लगा । बीज में अङ्कुर

पैदा हुआ। मूर्ति की ओर अनुराग उठा। चित्त का धर्म यह है कि जो मानसिक कर्म जितने दफे किया जाता है, उम कर्म के लिए उतनी ही अधिक प्रवृत्ति होती है; वह कर्म क्रमशः स्वभावमिद्ध हो जाता है; लुकुउन्निसा वह मूर्ति अहरहः मन में सोचने लगीं। दर्शन की तीव्र अभिलाषा पैदा हुई; साथ-साथ उनकी सहज स्पृहा का प्रवाह भी अनिवार्य हो गया। दिल्ली के सिंहासन की लालसा भी उनके निकट लघु हो गई। सिंहासन जैसे काम के वाणों में तैयार हुआ, आग में विरा मालूम देने लगा। राज्य, राजधानी और राजसिंहासन, सब छोड़कर प्रिय-दर्शन के लिए दौड़ीं। वह प्रिय नवकुमार है।

इसी लिए लुकुउन्निसा मेहरुन्निसा की आशानाशिनी बात सुनकर भी दुखी नहीं हुईं; इसी लिए आगरा आकर भी सम्पत्ति की रक्षा के लिए कोई यत्न नहीं किया; इसी लिए जन्म भर के लिए बादशाह से विदा ली।

लुकुउन्निसा सन्नप्राप्त आई। राजपथ के कुछ ही दूर नगर की एक अट्टालिका में डेरा डाला। राजपथ के पथिकों ने देखा, अकस्मान्त यह अट्टालिका सुवर्ण-व्यचित्त वस्त्रों में भूषित, दास-दासियों से पूर्ण हो गई है। कमरे-कमरे की सजावट बड़ी मनाहर है। गन्धद्रव्य, गन्धवारि, कुमुदाम सर्वत्र आभोद दे रहे हैं। सेने, चाँदी और हाथी के दाँतों से निर्मित, चित्रित, गृह शोभा के लिए नाना द्रव्य सब जगहों में प्रकाश भर रहे हैं। इसी तरह से मजे एक कमरे में लुकुउन्निसा सर झुकाये हुए बैठी हैं; अलग आसन पर नवकुमार बैठे हुए हैं। सन्नप्राप्त में नवकुमार से लुकुउन्निसा की और दो बार मुलाकात हो चुकी है; उममें लुकुउन्निसा का मनोरथ कहाँ तक सिद्ध हुआ था, वह आज की बातचीत से जाहिर होगा।

नवकुमार कुछ देर तक नीरव रहकर बोले, "तो मैं अब चला । तुम और मुझे मत बुलाना ।"

लुत्कउन्निमा ने कहा, "जाओ नहीं और कुछ रहो । मुझे जो कुछ कहना है, मैंने समाप्त नहीं किया ।"

नवकुमार ने और भी कुछ प्रतीक्षा की, परन्तु लुत्कउन्निमा ने कुछ कहा नहीं । कुछ देर बाद नवकुमार ने पूछा, "और क्या कहोगी ?" लुत्कउन्निमा ने कोई जवाब नहीं दिया । वे नीरव रहकर होती रहीं ।"

नवकुमार यह देखकर उठे, लुत्कउन्निमा ने उनका वस्त्राग्र धृत किया । नवकुमार ने कुछ विरक्ति से कहा, "कुछ कहो भी ।"

लुत्कउन्निमा ने पूछा, "तुम क्या चाहते हो ? संसार में क्या कुछ भी माँगने को नहीं ? धन, सम्पद, मान, प्रणय, रङ्ग, रहस्य, पृथ्वी में जिसे-जिसे सुख कहते हैं, सब दूँगी, किसी से भी उसका बदला नहीं चाहती; सिर्फ तुम्हारी दासी होना चाहती हूँ । तुम्हारी पत्नी हूँगी, यह गौरव भी नहीं चाहती, सिर्फ दासी हूँगी ।"

नवकुमार ने कहा, "मैं दगिद्र ब्राह्मण हूँ, इस जन्म में दगिद्र ब्राह्मण ही रहूँगा । तुम्हारा दिया धन, सम्पद लेकर यवनीजार नहीं हो सकूँगा ।"

यवनीजार !—नवकुमार अब तक नहीं समझ सके कि यह रमणी उनकी पत्नी है । लुत्कउन्निमा अधोवदन रहीं । नवकुमार ने उनके हाथ से वस्त्र का छोर छुड़ा लिया । लुत्कउन्निमा ने फिर उनका वस्त्राग्र पकड़ा, कहा, "अच्छा, वह जाय । विधाता की अगर वही इच्छा है तो चित्त-वृत्तियों को अतल जल में डुबाऊँगी । और कुछ नहीं चाहती, एक बार तुम इस राक्षस से जाना, दासी साँचकर एक-एक बार दर्शन देना, केवल आँखों की परि तृप्ति करूँगी ।"

नव—तुम यवनी हो, दूसरे की स्त्री हो, तुमसे ऐस आलाप से भी दोष है। तुमसे अब मेरी मुलाकात नहीं होगी।

कुछ देर नीरव ! लुकुउन्निमा के हृदय में तूफान चल रहा था। पत्थर की मूर्ति की तरह निःस्पन्द रहीं। नवकुमार के वस्त्र का छोर छोड़ दिया। कहा, “जाओ।”

नवकुमार चले। दो-चार कदम सिरु चले, एकाएक लुकुउन्निमा हवा में उग्राड़े पेड़ की तरह उनके पैरों पर गिरीं। बाहुलता से दोनों चरण बांधकर कातर स्वर से बोलीं, “निर्दय ! मैं तुम्हारे लिए आगरे का सिंहासन छोड़कर आई हूँ, तुम मेरा त्याग न करो।”

नवकुमार ने कहा, “तुम फिर आगरा लौट जाओ, मेरी आशा छोड़ दो।”

इस जन्म में नहीं। लुकुउन्निमा तीर की तरह खड़ी होकर दर्प से बोलीं, “इस जन्म में तुम्हारी आशा नहीं छोड़ूँगी।” सर उठाकर गर्दन कुछ टेढ़ी कर नवकुमार के मुँह की ओर अनि-मेप आयत आँखों से देखकर राज-राजमोहिनी खड़ी हुई। जो न टेढ़ा होनेवाला गर्व हृदय की आग में गल गया था, फिर उसकी ज्योति निकली; जो अजेय मानसिक शक्ति भारत के राज्यशासन की कल्पना में नहीं डगी, प्रणय की दुर्बल देह में वही शक्ति फिर संचारित हुई। मत्थे की नसें स्फीत होकर रमणीय रेखाओं में बदलीं; ज्योतिर्मयी आँखें सूर्य के करों से मुखर समुद्र के जल की तरह झुलमने लगीं; नथने काँपने लगे। स्नात पर विहार करनेवाली राजहंसी जिस तरह गति-विरोधी के प्रति गर्दन टेढ़ी करके खड़ी होती है, फणदलित होने हो फणिनी जिस तरह फन काढ़कर खड़ी होती है, वैसे ही उन्मादिनी यवनी मस्तक उठाकर खड़ी हुई। कहा, “इस जन्म में नहीं, तुम मेरे ही होंगे।”

कोप में आई उस नागिन की मूर्ति की तरफ देखते-देखते नव-कुमार डरे । लुक्कउन्निमा की अनिर्वचनीय देहमहिमा इस समय जैसी देखी, वैसी और कभी नहीं देखी । परन्तु वह श्री वज्र-सूचिका विद्युत् की तरह मनोमोहिनी थी, देखकर डर हुआ । नवकुमार चले जा रहे थे, तब सहसा एक और तेजोमयी मूर्ति उनके मन में आई । एक दिन नवकुमार अपनी पहली स्त्री पद्मावती से विरक्त होकर उन्हें शयनागार से निकालने का उद्यत हुए थे । द्वादशवर्षीया बालिका तब सदर्प उनकी ओर फिरकर खड़ी हुई थी, इसी तरह उसकी आँखें जल उठी थीं; इसी तरह ललाट में रेखा बन गई थी; इसी तरह नामागन्ध काँपे थे; इसी तरह सर हिला था । बहुत दिन वह मूर्ति याद नहीं आई, अब आई । वैसे ही सादृश्य अनुभूत हुआ । संशय में आकर नवकुमार ने संकुचित स्वर से धीरे-धीरे पूछा, “तुम कौन हो ?”

यवनी की आँखों के तारे और विम्फारित हुए । कहा, “मैं पद्मावती हूँ ।”

उत्तर की प्रतीक्षा न कर लुक्कउन्निमा दृमरी जगह चली गई । नवकुमार भी अन्य मन से, कुछ शंकित होकर, अपने घर गये ।



सातवाँ परिच्छेद

उपनगर-प्रान्त में

*“—I am settled and bend up
Each corporal agent to this terrible feat.”*

— Macbeth

दूसरे कमरे में जाकर लुक्कउन्निसा ने द्वार बन्द कर लिया। दो दिन तक उस कमरे में नहीं निकलीं। इन दो दिनों में उन्होंने अपना कर्तव्याकर्तव्य निश्चित किया। निश्चित करके दृढ़प्रतिज्ञ हुई। सूर्य तब अस्ताचलगामी थे। तब लुक्कउन्निसा पेशमन की सहायता से वेशभूषा कर रही थीं। तब अज्जुब की वेषभूषा थी। न पेशवाज है, न पाजामा, न आढ़नी; नारी-वेश का कांड चिह्न नहीं। जो वेशभूषा की, उसे आइने में देख कर पेशमन से कहा, “क्यों पेशमन, मुझे और पहचाना जाता है?”

पेशमन ने कहा, “किसकी मजाल?”

लु०—तो मैं चली। मेरे साथ जैसे कोई दास-दासी न जाय।

पेशमन ने कुछ सङ्कुचित-चित्त से कहा, “यदि दास-दासी का अपराध क्षमा करें तो एक बात पूछना चाहती हूँ।”

लुक्कउन्निसा ने पूछा, “क्या?”

पेशमन ने कहा, “आपका उद्देश्य क्या है?”

लुक्कउन्निसा ने कहा, “किलहाल कपाल-कुण्डला से उसके पति का चिह्नविच्छेद। वाद को वे मरे होंगे।”

पे०—बीबी, अच्छी तरह मोच लीजिए; वह घना वन, रात हो आई है; आप अकेली हैं।

इस बात का कोई जवाब न देकर लुत्कउन्निसा घर से बाहर निकलीं। सप्तग्राम के जिस जनहीन वनमय उपनगर-प्रान्त में नव-कुमार का घर है, उसी तरफ़ चलीं। उस प्रदेश में पहुँचते रात हो आई। नवकुमार के घर के कुछ ही दूर एक वन है। उसी के प्रान्त भाग में पहुँचकर एक पेड़ के नीचे बैठीं। कुछ देर तक बैठी रहकर जिस दृग्माहसिक कार्य में प्रवृत्त हुई थीं, उसके विषय में विचार करने लगीं। घटना-क्रम से उनकी न मोची हुई सहायता वहाँ हाज़िर हुई।

लुत्कउन्निसा जहाँ बैठी थीं, वहाँ से एक अविश्रुत समोच्चारित मनुष्यकण्ठनिर्गत शब्द सुना। उठकर खड़ी होकर चारों तरफ़ निगाह दौड़ाकर देखा, तो वन के भीतर एक प्रकाश देखा पड़ा। लुत्कउन्निसा हिस्मत में पुरुष से बढ़कर हैं, जहाँ आग जल रही है, वहाँ गई। पहले पेड़ की आड़ से देखा, मामला क्या है? देखा, जो आग जल रही थी, वह होम की आग है। जो शब्द सुना था, वह मन्त्र-पाठ का शब्द है। मन्त्र में एक शब्द उनकी समझ में आया, वह एक नाम है। नाम सुनते ही लुत्कउन्निसा होम करने-वाले के पास जाकर बैठीं।

चौथा खण्ड

पहला परिच्छेद

शयनागार में

“राधिकार वेड़ी भाङ्ग ए. मम मिनति ।”

—ब्रजाङ्गना काव्य ।

लुक्कउन्निमा को आगरा जाते और वहाँ से सप्तग्राम लौटते प्रायः एक साल लगा । कपाल-कुण्डला एक साल से कुछ अधिक समय से नवकुमार की गृहिणी हैं । जिस दिन प्रदोष के समय लुक्कउन्निसा वन में थीं, उस दिन कपाल-कुण्डला अन्य मन से शयनकक्ष में बैठी थीं । पाठक महाशयों ने आलुलायितकुन्तला भरणविहीना जिस कपाल-कुण्डला को देखा था, यह वह कपाल-कुण्डला नहीं । श्यामासुन्दरी की भविष्यवाणी सही हुई है । पारम-पत्थर के छू जाने से यागिनी गृहिणी हुई है । अब उन असंख्य कृष्णोज्ज्वल भुजङ्गों के व्यूह जैसी आगुत्पलम्बित केशराशि के पीछे स्थूल वेणी सम्यद्ध हुई है । वेणी-रचना में भी शिल्प की पूर्णता लक्षित हो रही है । केशविन्यास में बहुत से सूक्ष्म कारुकायें श्यामासुन्दरी के विन्यास-कौशल का परिचय दे रहे हैं । फूलों की माला भी नहीं छूटी, चारों ओर से मुकुट के मण्डल की तरह वेणी को घेरे हुए है । बालों का जो हिस्सा वेणी में नहीं आया, वह मस्तक पर एक सा ऊँचा नहीं रह गया; उसकी

उसकी घूँघराली छोटी छोटी काली तरङ्गें बनाकर शोभा की गई है। मुखमण्डल अब केशों के भार से आधा छिपा नहीं; ज्यातिर्मय होकर शोभा पा रहा है; केवल जगह-जगह बन्धन से छूटी छोटी-छोटी अलकें उस पर स्वेदविजड़ित हो रही हैं। वर्ण उसी आधे चाँद की रश्मि-सा रुचिर। इस समय दोनों कानों में सोने के कर्णभूषण हिल रहे हैं। गले में सोने का हार। वर्ण में वे सब मुरझाये नहीं, आधे चाँद की कौमुदी की साड़ी पहने धरणी के अङ्गों में नैश-कुसुम जैसे शोभा पा रहे हैं। उनके पहनावे में सफेद साड़ी है। वह सफेद साड़ी आधे चाँद से हँसते आकाश में हल्के सफेद बादल सी शोभा दे रही है।

रङ्ग वैसा ही आधे चाँद की कौमुदीवाला है सही, परन्तु जैसे पहले से कुछ सियाह है, जैसे आकाश के किनारे कहीं काला बादल देख पड़ा है। कपाल-कुण्डला अकेली नहीं बैठी थीं; मखी श्यामासुन्दरी पास बैठी थीं। उन दोनों की आपस में बातचीत हो रही थी। उसका कुछ अंश पाठकों को सुनना होगा।

कपाल-कुण्डला ने कहा, “ननदोईजी और कितने दिन यहाँ रहेंगे ?”

श्यामा ने कहा, “कल तीसरे पहर चले जायेंगे। अहा, आज रात को अगर दवा ले रखती, तो भी उन्हें वश करके मनुष्य-जन्म सार्थक कर सकती। कल रात को बाहर निकली थी, इसलिए भाड़ और लातें खाई, फिर आज किस तरह निकलूँगी ?”

क०—दिन में ले आने पर क्यों नहीं होता ?

श्या०—दिन में ले आने पर उसका फल क्या होगा ? ठीक आधी रात को खुले बालों से लानी पड़ती है। सो भई, मन की साथ मन में ही रही।

क०—अच्छा, मैं तो आज दिन में वह पेड़ पहचान आई हूँ, और जिस वन में होता है, वह भी देख आई हूँ। तुम्हें आज जाना नहीं होगा, मैं अकेली जाकर दवा ले आऊँगी।

श्या०—एक दिन जो कुछ हुआ, हुआ। रात को अब तुम बाहर न निकलना।

क०—इसके लिए तुम क्यों चिन्ता करती हो ? सुना तो है, रात को घूमने की मेरी लड़कपन में आदत है। सोचकर देखो, अगर मेरी वह आदत न रहती, तो तुम्हारी मेरी चार आँखें एक न होतीं।

श्या०—उस डर से नहीं कह रही, परन्तु अकेली रात में वन-वन घूमना क्या गृहस्थ की बहू-बेटी के लिए अच्छा है ? दो जनी जाने पर भी इतनी फटकार खाई, तुम अकेली जाओगी तो कोई बचाव होगा ?

क०—नुकसान भी क्या है ? तुमने क्या सोचा है, मैं रात का घर के बाहर पेड़ बढ़ाकर दुश्चित्रा हा जाऊँगी ?

श्या०—मैं ऐसा नहीं सोचती। परन्तु बुरे आदमी बुरा कहेंगे।

क०—कहें, इससे मैं बुरी नहीं हो जाऊँगी।

श्या०—सो तो नहीं होगी; परन्तु तुम्हें कोई बुरा कहेगा तो हमारे अन्तःकरण को क्लेश पहुँचेगा।

क०—ऐसा अन्याय क्लेश न पहुँचने दो।

श्या०—यह भी मैं कर सकूँगी, परन्तु दादा का क्यों दिल दुखाओगी ?

कपाल-कुण्डला ने श्यामासुन्दरी के प्रति अपना स्निग्धोज्ज्वल कटाक्ष डाला। कहा, “इससे उनका दिल दुखे तो मैं क्या करूँगी ? अगर मैं जानती कि औरत का ब्याह करना दासी होना है, तो कदापि विवाह न करती।”

इसके बाद बातें श्यामासुन्दरी की समझ में अच्छी तरह नहीं आई, अपने काम में उठ गई।

कपाल-कुण्डला आवश्यक गृह-कर्म में लगीं। घर का काम पूरा करके दवा की खोज में घर से बाहर निकलीं। तब रात एक पहर से अधिक हो चुकी थी। रात चाँदनी। नवकुमार बाहर के बैठक में बैठे थे। कपाल-कुण्डला बाहर निकली जा रही हैं, यह भगोबे से उन्होंने देखा। वे भी कमरा छोड़कर बाहर निकले और आकर मृगमयी का हाथ पकड़ा। कपाल-कुण्डला ने पूछा, “क्या है?”

नवकुमार ने पूछा, “कहाँ जा रही हो?” नवकुमार के स्वर में तिरस्कार की सूचना तक नहीं थी।

कपाल-कुण्डला ने कहा, “श्यामासुन्दरी पति को वशीभूत करने के लिए दवा चाहती है, मैं दवा की खोज में जा रही हूँ।”

नवकुमार ने पहले की तरह कोमल स्वर से कहा, “अच्छा, कल तो एक दफा गई थीं, आज अब फिर क्यों?”

क०—कल खोजने पर नहीं मिली, आज फिर खोजूँगी।

नवकुमार ने बड़े कोमल भाव से कहा, “अच्छा, दिन में खोजने पर भी तो हो सकता है?” नवकुमार का स्वर स्नेह से भरा हुआ।

कपाल-कुण्डला ने कहा, “दिन में दवा फल नहीं देती।”

नव०—दवा खोजने की तुम्हें जरूरत क्या है? मुझे पेड़ का नाम बतला दो। मैं दवा ले आऊँगा।

क०—मैं पेड़ देखकर पहचान सकती हूँ, लेकिन नाम नहीं जानती। और तुम्हारे लाने से फल नहीं होगा। औरत को बाल गालकर लाना पड़ता है। तुम दूसरे के उपकार में विघ्न न करो।

कपाल-कुण्डला ने ये बातें अप्रसन्नता से कीं। नवकुमार ने और रुकावट नहीं डाली। कहा, “चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।”

कपाल-कुण्डला ने गर्वित स्वरों से कहा, “आओ, मैं अविश्रासिनी हूँ या नहीं, अपनी आँखों देख जाओ।”

नवकुमार और कुछ नहीं कह सके। साँस के साथ कपाल-कुण्डला का हाथ छोड़कर घर लौट आये। कपाल-कुण्डला अकेली वन में पैठी।

दूसरा परिच्छेद

काननतल

*“—————Tender is the night
And haply the queen moon is on her throne
Clustered around by all her starry fays ;
But here there is no Light.*

—Keats.

सप्तग्राम का यह भाग जङ्गली है, यह पहले ही कुछ-कुछ कहा जा चुका है। गाँव के कुछ दूर घना वन है। कपाल-कुण्डला अकेली एक जङ्गली सँकरी राह से दवा की ग्राज में चलीं। गान मधुर है, कहीं किसी तरह की आवाज़ नहीं आ रही। वसन्त की रात के आकाश में ठण्डी रश्मियों का चाँद चुपचाप मफेद बादलों को पार कर रहा है। पृथ्वी में जङ्गली पेड़ और लताएँ उसी तरह चुपचाप शीतल चन्द्रकिरणों में विश्राम कर रहे हैं। चुपचाप पेड़ के पत्ते उन किरणों से प्रतिघात कर रहे हैं। चुपचाप लता-गुल्मों में श्वेत-कुसुमदल विकसित हो रहे हैं। केवल कहीं एक-आध बार के लिए विश्राम में बाधा पाये पत्ती के बाज फटकारने का शब्द होता है, कहीं क्वचिन् सूखे पत्र के पतन का शब्द, कहीं नीचे सूखे पत्तों में उरग जातीय जीव के संसरण का शब्द है, कहीं बहुत दूर कुत्ते के भौकने की आवाज़ है। ऐसा नहीं कि दवा बिलकुल नहीं चल रही, देह को स्निग्ध करनेवाली वसन्त की हवा, बहुत ही

मन्द, एकान्त निःशब्द केवल हवा; उससे सिरक पेड़ों के सबसे ऊपर-
वाले पत्ते हिल रहे थे, भूमि तक प्रणत 'श्यामा' लता केवल हिल रही
थी, केवल नीले आसमान में विचरण करनेवाले छोटे सफेद बादलों
के टुकड़े धीरे-धीरे चल रहे थे। उस तरह की हवा के संस्पर्श से
पहले के सुग्व की अस्पष्ट स्मृति केवल हृदय में थोड़ी-थोड़ी जग
रही थी।

कपाल-कुण्डला की वैसी ही पूर्व स्मृति जग रही थी। बावू
के शिखरों पर समुद्र के जल को छूकर जो मलयानिल उनकी
लम्बी अलकों के मण्डल में खेलती थी, वह याद आई, निर्मल नील
अनन्त गगन के प्रति आँख उठाकर उन्होंने देखा; वह नीला अनन्त
आकाशरूपी समुद्र याद आया। कपाल-कुण्डला पहले की स्मृति
आलोचना करती हुई अन्यमनस्क होकर चली।

अन्य मन से जाते जाते कहाँ किस उद्देश्य से जा रही थीं, यह
कपाल-कुण्डला ने न सोचा। जिस रास्ते से जा रही थीं, वह
क्रमशः अगम्य हो आया। वन निविडतर हो गया। सिर पर
पेड़ों की डालों से चाँदनी प्रायः रुद्ध हो आई। क्रमशः और राह
नहीं देख पड़ती। रास्ता न देख पड़ने पर कपाल-कुण्डला पहले
चिन्ता से कुछ सचेत हुई। इधर-उधर निगाह दौड़ाकर देखा, इस
निविड वन में प्रकाश हो रहा है। लुत्कउन्निसा ने भी पहले यह
प्रकाश देखा था। पहले के अभ्यास के कारण कपाल-कुण्डला
इन समयों में निडर और कौतूहलमयी थीं। धीरे-धीरे उस दिये
की ज्योति की तरफ गई। देखा, जहाँ प्रकाश हो रहा है, वहाँ
कोई नहीं। परन्तु उसके कुछ ही दूर पर वन की निविडता के
कारण दूर से न देख पड़नेवाला एक दूटा घर है। घर ईंटों का
बना हुआ है, परन्तु बहुत ही छोटा, बहुत ही साधारण है। उसमें
एक ही कमरा है। उस घर से आदमी की बातचीत की आवाज आ

रही थी। कपाल-कुण्डला चुपचाप पेर रखती हुई घर के पास गई। घर के पास जाते ही मालूम दिया, दो आदमी सावधानी से बातें कर रहे हैं। पहले बातचीत उनकी समझ में नहीं आई। बाद को क्रमशः केशिश करने पर सुनने की तीव्रता पैदा हुई तो नीचे लिखी बातें सुनीं—

एक आदमी कह रहा है, “मेरा अभीष्ट है, मृत्यु हो; इसमें तुम्हारा मत न हो तो मैं तुम्हारी सहायता नहीं करूँगा, तुम भी मेरी मदद न करना।”

दूसरे आदमी ने कहा, “हित मैं भी नहीं चाहता, परन्तु ज़िन्दगी भर के लिए देश-निकाला हो, इसमें मैं सम्मत हूँ। परन्तु हत्या का कोई उद्योग मुझसे नहीं होगा, बल्कि मैं उसकी प्रतिकूलता करूँगा।”

पहली बात कहनेवाले ने कहा, “तुम निर्ये अयोध और नादान हो। तुम्हें कुछ ज्ञान दे रहा हूँ। मन लगाकर सुनो। बड़ा गूढ़ वृत्तान्त कहूँगा। चारों ओर एक दफ़ा देख आओ, जैसे आदमी की साँस की आहट मिल रही है।”

वास्तव में कपाल-कुण्डला बातचीत अच्छी तरह सुनने के लिए कमरे की दीवार के बहुत पास आकर खड़ी हुई थी और उनकी आग्रह की अतिशयता और शंका के कारण गहरी-गहरी साँस चल रही थी।

साथी की बात से घर के भीतर से एक व्यक्ति बाहर आया और आकर ही कपाल-कुण्डला को देखा। कपाल-कुण्डला ने भी साफ़ चाँदनी में आनेवाले व्यक्ति का आकार साफ़-साफ़ देखा। देखकर डरेंगी या खुश होंगी, यह निश्चित नहीं कर सकी। देखा, आगन्तुक ब्राह्मणवेशी है। मामूली धोती पहने हुए है। बदन चादर से अच्छी तरह ढका है। ब्राह्मणकुमार कामल-वयस्क है, मुँह में उम्र का चिह्न कुछ भी नहीं। मुँह बड़ा सुन्दर है,

सुन्दरी स्त्री के मुँह की तरह सुन्दर है, परन्तु स्त्री के मुँह में वह तेज और गर्व नहीं मिलता। उसके बाल प्रायः पुरुषों के बालों की तरह क्षौर कर्म कराये हुए नहीं। स्त्रियों की तरह चदर खोलकर ओढ़े हुए है; पीठ में, कन्धों में, बाहों में और कदाचित् वक्ष पर चदरा सिकुड़ा हुआ पड़ा है। ललाट चौड़ा है, कुछ भरा हुआ, बीच में एक नस तनी हुई शोभा बढ़ा रही है। दोनों आँखें बिजली के प्रकाश से पूर्ण हैं। विना म्यान की एक लम्बी तलवार हाथ में। परन्तु इस रूपराशि के भीतर एक भीषण भाव व्यक्त हो रहा था। उस हेमकान्त वर्ण पर जैसे कामना की कोई कराल छाया पड़ी थी। अन्तस्तल तक पहुँचकर खोज लेनेवाला कटाक्ष देखकर कपाल-कुण्डला डरीं।

दोनों एक दूसरे की ओर कुछ देर देखते रहे। पहले कपाल-कुण्डला ने पलकें लीं। कपाल-कुण्डला के पलक लेंते आगन्तुक ने पूछा, तुम कौन हो ?

यदि एक साल पहले हिजली के केवड़े के वन में कपाल-कुण्डला से यह प्रश्न किया जाता तो वे उसी वक्त उसका सङ्गत उत्तर देतीं। परन्तु इस समय कपाल-कुण्डला कुछ हद तक गृह-रमणी के स्वभाव में ढल चुकी थीं, इसलिए एकाएक जवाब नहीं दे सकीं। ब्राह्मण-वेशी ने कपाल-कुण्डला को निरुत्तर देखकर कहा, “कपाल-कुण्डला! तुम इस निविड़ वन में रात को किस लिए आई हो ?”

न जाने हुए, रात को विचरण करनेवाले, पुरुष के मुख से अपना नाम सुनकर कपाल-कुण्डला तन्मज्जुव में आ गई, कुछ डरीं भी। उनके मुँह से एकाएक कोई जवाब नहीं निकला।

सहसा कपाल-कुण्डला को वाक्शक्ति फिर से प्राप्त हुई। उन्होंने उत्तर न देकर कहा, “मैं भी यही पूछ रही हूँ। इस वन में तुम दोनों आदमी इस आधी रात में कौन सा कुपरामर्श कर रहे थे ?”

ब्राह्मणवेशी कुछ काल तक निरुत्तर रहकर चिन्तामग्न रहे, जैसे किसी नई अभिलाषा की पूर्ति का उपाय उनके मन में आ उपस्थित हुआ। उन्होंने कपाल-कुण्डला का हाथ पकड़ा और हाथ पकड़कर दूटे गृह से कुछ दूर ले जाने लगे। कपाल-कुण्डला ने बड़े क्रोध से हाथ छुड़ा लिया। ब्राह्मणवेशी ने बड़े कोमल स्वर से कपाल-कुण्डला के कान में कहा, “चिन्ता क्या है, मैं पुरुष नहीं।”

कपाल-कुण्डला और भी चौकी। इस बात का उन्हें कुछ विश्वास हुआ, पूरा पूरा विश्वास नहीं हुआ। वे ब्राह्मणवेशधारिणी के साथ-साथ गईं। दूटे गृह से अदृश्य जगह जाकर उस ब्राह्मणवेशी ने कपाल-कुण्डला के कान में कहा, “हम लोग जो बुरा परामर्श कर रहे थे, वह सुनोगी? वह तुम्हारे ही संबन्ध में है।”

कपाल-कुण्डला का भय और आग्रह बहुत बढ़ गया। कहा, “सुनूंगी।”

“तो जब तक मैं लौट न आऊँ तब तक यहीं प्रतीक्षा करो।” यह कहकर ब्राह्मणवेशी दूटे गृह में लौट आया। कपाल-कुण्डला कुछ देर वहाँ बैठी रहीं। परन्तु जो कुछ देखा था और सुना था, उससे बड़ा विकट भय उनमें पैदा हो गया था। इस समय अकेली अंधेरे वन में बैठी रहने के कारण और भी डरने लगीं। तब से, यह ब्राह्मणवेशी उन्हें किस अभिप्राय से वहाँ बैठा गया, यह कौन कह सकता है? मुमकिन, सुयोग पाकर अपना बुरा अभिप्राय सिद्ध करने के लिए ही बैठा गया है। इस तरह की आलोचना कर कपाल-कुण्डला भय से विह्वल हुई। इधर ब्राह्मण-वेशी को लौटने में बड़ी देर होने लगी। कपाल-कुण्डला और बैठ नहीं सकीं, तेज कदम घर की तरफ चलीं।

तब आकाश घनघटा से काला हो चला । वन के नीचे जो थोड़ा सा प्रकाश था, वह अन्तर्हित होने लगा । कपाल-कुण्डला और क्षणभर के लिए भी नहीं रुक सकीं । जल्द-जल्द पैर बढ़ाती हुई वन के भीतर से बाहर आने लगीं । आने के समय जैसे पीछे दूसरे व्यक्ति के पैर की आहट सुनने लगीं । परन्तु मुँह फेरकर आँधरे में कुछ देख नहीं पाया । कपाल-कुण्डला ने सोचा, ब्राह्मण-वेशी उनके पीछे आ रहा है । वन छोड़कर पहले कहे छूटे वन-पथ पर आ निकलीं । वहाँ वैसा आँधरा नहीं, निगाह की पहुँच में रहने पर आदमी देख पड़ता है । परन्तु कुछ भी नहीं देख पड़ा । इसलिए द्रुत पद से चलीं, परन्तु फिर साफ आदमी की गति का शब्द सुनने लगीं । आकाश नीली कादम्बिनी से और भीपण ड़ा गया । कपाल-कुण्डला और द्रुत चलीं । घर पास ही है । परन्तु घर पहुँचते-पहुँचते प्रचण्ड वेग से आँधी और पानी योग्य करता हुआ होने लगा । कपाल-कुण्डला दौड़ीं । पीछे जो आदमी आ रहा था, वह भी जैसे दौड़ा, ऐसा शब्द मालूम दिया । घर दिखने के पहले ही प्रचण्ड आँधी और पानी कपाल-कुण्डला के सर से प्रभावित हो चले । बार-बार गम्भीर मेघ गर्जन और वज्रपात के शब्द होने लगे । बार-बार बिजली कौंधने लगी । मूसलधार पानी बरसने लगा । कपाल-कुण्डला किसी तरह अपने को बचाकर घर आई । सहन पाकर कमरे पर चढ़ीं । उनके लिए द्वार खुला था । द्वार बन्द करने के लिए सहन की तरफ मुँह किया । मालूम हुआ, जैसे सहन में एक लम्बा आदमी खड़ा है । इसी समय एक बार बिजली कौंधी । एक बाग की बिजली में ही उन्होंने उसे पहचान लिया । वह समन्दर के किनारे का वही कपालिक था ।

तीसरा परिच्छेद

स्वप्न में

"I had a dream, which was not all a dream"

—Byron.

कपाल-कुण्डला ने, धीरे-धीरे दरवाजा बन्द कर लिया । धीरे-धीरे शयनकक्ष में आई, धीरे-धीरे पलंग पर लेटी । आदमी का हृदय अनन्त समुद्र है, जब उस पर पागल हवाएँ लड़ती रहती हैं, तब कौन उसकी तरङ्गों को गिन सकता है ? कपाल-कुण्डला के हृदय-समुद्र में जो तरङ्गें उठ रही थीं, उन्हें कौन गिनेगा ?

उस रात को नवकुमार हृदय की वेदना के कारण अन्तःपुर नहीं आये । शयनकक्ष में अकेली कपाल-कुण्डला लेटी । परन्तु आँख नहीं लगी । प्रबल वायु से ताड़ित, वारिधारा से धुला, जटाजूट से चिरा हुआ वह मुँह अधेरे में भी चारों ओर देखने लगीं । कपाल-कुण्डला पहले सब वृत्तान्त आलोचना करके देखने लगीं ! कापालिक के साथ जैसा आचरण करके वे चली आई थीं, वह याद आने लगा । कापालिक घने वन में जो पैशाचिक कार्य करते थे, वे याद आने लगे । उनकी भैरवी-पूजा, नवकुमार का बन्धन, सब याद आने लगे । कपाल-कुण्डला काँप उठी । आज की रात की कुल घटनाएँ भी मन में उठने लगीं । श्यामा की दवा की इच्छा, नवकुमार का निषेध, उनके प्रति कपाल-कुण्डला का तिरस्कार, इसके बाद अरण्य की ज्योत्स्ना-

मयी शोभा, कानन के नीचे अँधेरा, उस अरण्य में जो सहचर पाया था उसका भीम दर्शन गुणवाला रूप, सब याद आने लगे।

पूर्व में ऊपा की मुकुट-ज्योति निकली, तब कपाल-कुण्डला को कुछ तन्द्रा आई। उस अप्रगाढ़ निद्रा में कपाल-कुण्डला स्वप्न देखने लगीं। वे जैसे उस पहले दिखे समुद्र के वच में नाव पर बैठी हुई जा रही थीं। नाव सजी हुई है; उसमें वसन्ती रङ्ग की पताका उड़ रही है; नाविक फूलों की माला पहने हुए खे रहे हैं। राधाश्याम के अनन्त प्रणय के गीत गा रहे हैं। पश्चिम के आकाश से सूर्य सोने की धारा भर रहा है। सोने की धारा पाकर समुद्र हँस रहा है। आकाश-मण्डल में मेघ उस सोने की वृष्टि में दौड़ते हुए नहा रहे हैं। अकस्मान् गत हुई, सूर्य न जाने कहाँ गया। सोने के मेघ कहाँ गये। निविड़ नील कादम्बिनी ने आकर आकाश छा लिया। अब समुद्र में दिशा का निरूपण और नहीं होता। नाविकों ने नाव लौटाई। किस तरह खेयेंगे, ठीक नहीं कर पा रहे। उन लोगों ने गाना बन्द किया, गले की मालाएँ तोड़ डालीं। वसन्ती रङ्ग की पताका आप खुलकर पानी में गिर गई। तूफान उठा, पेड़ की ऊँचाई की तरङ्गें उठने लगीं, उन तरङ्गों के भीतर से जटाजूटधारी, दीर्घ आकार का एक पुरुष आकर कपाल-कुण्डला की नाव बायें हाथ से उठाकर समुद्र में फेंकने को उद्यत हुआ। ऐसे समय वह भीम-दर्शन श्रीयुक्त ब्राह्मणवेशवाला आकर नाव पकड़े रहा। उसने कपाल-कुण्डला से पूछा, “तुम्हें रक्खूँ या डुबा दूँ?” अकस्मान् कपाल-कुण्डला के मुँह से निकला, “डुबा दो।” ब्राह्मणवेशी ने नाव छोड़ दी। तब नाव भी शब्दमयी हो गई, बोल उठी। नाव ने कहा, “मैं अब और यह भार नहीं ढो सकती। मैं पाताल

में प्रवेश करती हूँ।” यह कहकर नाव उसे पानी में फेंककर पाताल में प्रवेश कर गई।

पसीने-पसीने होकर कपाल-कुण्डला स्वप्न से जगी। आँखें खोलीं, देखा, प्रभात हो गया है, कमरे के भरोखे खुल हुए हैं, उनसे वसन्त की हवा का स्रोत पैठ रहा है। कुछ कुछ हिलती हुई पेड़ों की शाखा में चिड़ियाँ चहक रही हैं। उन भरोखों पर कुछ मनोहर जङ्गली लताएँ सुगन्धित फूलों के साथ हिल रही हैं। कपाल-कुण्डला नारी-स्वभाव के अनुसार उन लताओं को सुथरा करने लगी; उन्हें सुशृङ्खलरूप से बाँधते-बाँधते एक से एक चिट्ठी पाई। कपाल-कुण्डला अधिकारी की छात्रा थीं, पढ़ना जानती थीं। नीचे लिखा पत्र पढ़ा—

“आज शाम के बाद कल रात के ब्राह्मणकुमार से मुलाकात करना। अपने सम्बन्धवाली एकान्त आवश्यक जो बात सुनना चाहती थीं, वह सुनना।

अहं ब्राह्मणवेशी।”



चौथा परिच्छेद

कृतसंकेते

“—*I will have grounds
More relative than this.*”

—Hamlet.

कपाल-कुण्डला उस दिन शाम तक कोई दूसरी चिन्ता न कर यही सोचती रहीं कि ब्राह्मणवेशधारी से मिलना उचित होगा या नहीं। पतिव्रता युवती के लिए रात को एकान्त में अपरिचित पुरुष के साथ मिलना अनुचित है, इस खयाल से उनके मन में संकोच नहीं हुआ; इस सम्बन्ध में उनका सिद्धान्त निश्चित था कि मिलने का उद्देश अगर बुग न हो तो ऐसे मिलने में दोष नहीं—पुरुष-पुरुष या स्त्री-स्त्री में जिस तरह मिलने का अधिकार है, स्त्री-पुरुष में मिलने का दोनों के लिए वैसा ही अधिकार है, उसका खयाल था; विशेष रूप से, ब्राह्मणवेशी पुरुष है या नहीं, इसमें सन्देह है। अस्तु, वह संकोच अनावश्यक है; परन्तु इस मुलाकात से भला होगा या बुग, यही अनिश्चित है, इसलिए कपाल-कुण्डला यहाँ तक संकोच कर रही थीं। पहले ब्राह्मणवेशी की बातचीत, बाद कापालिक को देखना, इसके बाद स्वप्न, इन सब कारणों से कपाल-कुण्डला के हृदय में अपने लिए बड़ा डर हो रहा था। अपना अमङ्गल पास ही है, ऐसा सन्देह प्रबल हो गया था। वह अमङ्गल कापालिक के आने के साथ मिला हुआ है, ऐसा सन्देह भी अमूलक नहीं मालूम दिया। यह ब्राह्मणवेशी उसी का सहचर मालूम देता है, इसलिए उससे मिलने पर उस आशंकावाले

अमङ्गल में वे गिर भी सकती हैं। उसने तो साफ़-साफ़ कहा है कि कपाल-कुण्डला के सम्बन्ध में ही परामर्श हो रहा था। परन्तु ऐसा भी हो सकता है कि मिलने से उसके निराकरण की सूचना होगी। ब्राह्मणकुमार एक व्यक्ति के साथ गुप्त भाव से परामर्श कर रहा था, वह व्यक्ति यही कापालिक मालूम देता है। उस बात-चीत में किसी की मृत्यु का संकल्प सूचित हो रहा था, कम से कम सदा के लिए निर्वासन। यह किसके लिए? ब्राह्मणवेशी ने तो साफ़ कह दिया है कि कपाल-कुण्डला के सम्बन्ध में ही कुपरा-मर्श हो रहा था। तो उसी की मृत्यु या उसी के चिरनिर्वासन की कल्पना हो रही थी। तब, जब कि इस भीषण अभिसन्धि में ब्राह्मणवेशी सहायगी है, तब उसके पास रात में अकेली दुर्गम वन में जाना केवल विपत्त का कारण हो सकता है। परन्तु कल रात को स्वप्न देखा था; वह स्वप्न;—उस स्वप्न का तात्पर्य क्या है? स्वप्न में ब्राह्मणवेशी ने महाविपत्ति के समय आकर उनकी रक्षा करनी चाही थी, काम में भी वैसा ही आ रहा है। ब्राह्मणवेशी कुल बातें बतलाना चाहते हैं। कपाल-कुण्डला ने स्वप्न में कहा था, “डुबा दो”, काम में भी क्या वैसा ही कहेंगी? ब्राह्मणवेशी की सहायता छोड़कर क्या विपत्ति के समुद्र में डूबेंगी? नहीं—नहीं—भक्तवत्सला भवानी ने अनुग्रह करके स्वप्न में उनकी रक्षा के लिए उपदेश दिया है, ब्राह्मणवेशी आकर उनका उद्धार करना चाहते हैं, उनकी सहायता छोड़ने पर डूबेंगी। अस्तु, कपाल-कुण्डला ने उनसे मिलना ही निश्चित किया। विज्ञ व्यक्ति इस तरह का सिद्धान्त करते या नहीं, इसमें सन्देह है। परन्तु विज्ञ व्यक्ति के सिद्धान्त से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं। कपाल-कुण्डला विशेष विज्ञ नहीं थी, इसलिए विज्ञ का जैसा सिद्धान्त नहीं किया। कौतूहलवाली स्त्री का जैसा सिद्धान्त किया, भीमदर्शन सुन्दर युवा को

देखने के लिए उत्सुक युवती का जैसा सिद्धान्त किया, रात को वन-भ्रमण की इच्छा रखनेवाली संन्यासी की पाली हुई का जैसा सिद्धान्त किया, भवानी के भक्ति-भाव में विमोहिता का जैसा सिद्धान्त किया, जलती हुई आग की शिखा में गिरते हुए पतिङ्ग का जैसा सिद्धान्त किया ।

सन्ध्या के बाद घर का काम-कुञ्ज कुछ पूरा करके कपाल-कुण्डला पहल की तरह वन की ओर चलीं । चलने के समय शयनकक्ष का दिया तेज कर गई । वे ज्योंही कमरे से बाहर हुई, वैसे ही कमरे का दिया गुल हो गया ।

चलते समय कपाल-कुण्डला एक बात भूल गई । ब्राह्मणवेशी ने किस जगह मिलने के लिए लिखा है ? इसलिए फिर से पत्र पढ़ना आवश्यक हुआ । घर लौटकर, जिस जगह सुबह चिट्ठी रखी थी, वहाँ खोजा, वहाँ चिट्ठी नहीं मिली । याद आया कि बाल बाँधने के समय वह चिट्ठी साथ-साथ रखने के इरादे से कवरी में खोंस ली थी । कवरी में अँगुलियाँ गड़ाकर खोजा । चिट्ठी अँगुलियों में नहीं लगी, तब वेणी खोल दी, फिर भी वह चिट्ठी नहीं मिली । तब घर में दूसरी जगह खोजने लगीं । कहीं भी न मिलने पर, अन्त में, पहली ही जगह मुलाकात होगी, ऐसा सिद्धान्त कर फिर चलीं । अवकाश न रहने से उस विशाल केश-राशि को फिर से बाँध नहीं सकीं । अस्तु, आज कपाल-कुण्डला अनृद्धा काल की जैसी केश-मण्डल-मध्यवर्तिनी होकर चलीं ।

पाँचवाँ परिच्छेद

घर के द्वार पर

"Stand you a while apart,

Confine yourself but in a patient list."

Othello.

जब शाम में पहले कपाल-कुण्डला घर के काम में लगी थीं, तब चिट्ठी जूड़े से खुलकर जमीन में गिर गई थी। कपाल-कुण्डला यह नहीं मालूम कर सकी। नवकुमार ने यह देख लिया था। जूड़े से चिट्ठी खुलकर गिरी देखकर नवकुमार विस्मित हुए थे। कपाल-कुण्डला दूसरे काम में गई तो चिट्ठी ग्वालकर बाहर ले जाकर पढ़ी थी। उस पत्र के पाठ से एक ही सिद्धान्त सम्भव है। "जो बात कल सुनना चाहती थीं, वह बात सुनोगी?" वह क्या है? प्रणय की बात? ब्राह्मणवेशी मृगमयी का उपपति है? जो आदमी पिछली रात की बातें नहीं जानता, उसके लिए दूसरा सिद्धान्त नहीं दे सकता।

पति के साथ सहगमन के समय अथवा दूसरे कारण से जब कोई पतिव्रता जीती हुई, चिता पर चढ़कर चिता में आग लगाती है तब पहले धूमराशि उठकर चारों तरफ से उसे घेर लेती है, उसकी दृष्टि अवशुद्ध करती है, अंधेरा भरती है; बाद के क्रमशः काठ की राशि का जलना आरम्भ होने पर पहले नीचे से साँप की जीभ की तरह दो-एक शिखाएँ आकर अङ्गों में जगह-जगह काटती हैं, बाद के शब्द करती हुई आग की लपटें चारों ओर से आकर घेर लेती हैं और अङ्ग-प्रत्यङ्ग को व्याप्त करती रहती हैं; अन्त में

प्रचण्ड रव से अग्निगशि आकाशमण्डल को आलोकित करती हुई मन्तक को पारकर भस्म कर डालती है ।

चिट्ठी पढ़ने पर नवकुमार का ऐसा ही हुआ । पहले समझ नहीं सके । बाद के संशय, फिर निश्चय, अन्त में जलन । आदमी का हृदय एक ही साथ क्लेश या सुख की अधिकता ग्रहण कर नहीं सकता, धीरे धीरे करता है । नवकुमार को पहले धूमगशि ने वेग, फिर आग की शिखाएँ हृदय को तपाने लगीं, अन्त में अग्निगशि से हृदय भस्म होने लगा । इससे पहले ही नवकुमार ने देखा कि कपाल-कुण्डला किमी-किमी विषय में उनकी अवाध्य हो गई हैं । खास तौर से कपाल-कुण्डला उनका निषेध होने पर भी जब जहाँ इच्छा, वहाँ अकेली जाती थीं; हर एक के साथ इच्छानुसार आचरण करती थीं; अधिकन्तु उनकी बात की अवहेलना करके आधी रात को अकेली वन घूमने जाती थीं । और कोई होता तो इससे उसे सन्देह होता, परन्तु नवकुमार के हृदय में कपाल-कुण्डला के लिए सन्देह उठने पर न रोके जानेवाली बिच्छू के डंक मारने की जैसी जलन होती थी, इसलिए एक दिन के लिए भी सन्देह को उन्होंने जगह नहीं दी । आज भी सन्देह को जगह न देते, परन्तु आज सन्देह नहीं, प्रतीति आकर खड़ी हुई है ।

जलन की पहली बाद घटने पर नवकुमार चुपचाप बैठे हुए बड़ी देर तक रोते रहे । रोकर कुछ हल्के हुए । तब अपना कर्तव्य मोचकर उन्होंने निश्चय किया । आज वे कपाल-कुण्डला से कुछ बोलेंगे नहीं । कपाल-कुण्डला जब शाम को वन की ओर चलेंगी, तब छिपकर उनके पीछे लगेंगे, कपाल-कुण्डला का महापाप अपनी आँखों देखेंगे, इसके बाद यह जान देंगे । कपाल-कुण्डला से कुछ नहीं बोलेंगे; अपने प्राण देंगे । न देकर करेंगे क्या ? इन प्राणों का दुर्वह भार ढोने की उनमें शक्ति नहीं होगी ।

यह निश्चय कर कपाल-कुण्डला के बाहर जाने की प्रतीक्षा में वे खिड़कीवाले दरवाजे की तरफ निगाह किये गये। कपाल-कुण्डला के बाहर निकल कर कुछ दूर जाने पर, नवकुमार भी बाहर निकल गये थे, ऐसे समय कपाल-कुण्डला चिट्ठी के लिए लौटती देखकर नवकुमार भी हट गये। अन्त में कपाल-कुण्डला के फिर बाहर निकलकर कुछ दूर जाने पर नवकुमार फिर उनके पीछे निकल गये थे कि देखा, दरवाजे को बंद कर एक दीर्घकाय पुरुष खड़ा है।

वह कौन आदमी है, क्या खड़ा है, जानने की नवकुमार की जरा भी इच्छा नहीं हुई। उसकी तरफ आँखें उठाकर भी नहीं देखा। केवल कपाल-कुण्डला की ओर नज़र रखने को उतावले थे। इसलिए रास्ता निकालने के लिए आगन्तुक के हृदय पर हाथ रखकर एक बगल करना चाहा, परन्तु उसे हटा नहीं सके।

नवकुमार ने कहा, “तुम कौन हो? दूर होओ—मेरा रास्ता छोड़ो।”

आगन्तुक ने कहा, “मैं कौन हूँ, तम क्या नहीं पहचानते?”

शब्द समुद्र की गरज की तरह कानों में गूँजा! नवकुमार ने आँखें उठाकर देखा, देखा, वह पहले का परिचित जटाजूट-धारी कापालिक है।

नवकुमार चौंक उठे; परन्तु डरे नहीं। एकाएक उनका मुँह प्रफुल्ल हुआ, कहा, “कपाल-कुण्डला क्या तुमसे मिलने जा रही है?”

कापालिक ने कहा, “नहीं।”

जलते ही आशा का दिया तभी गुल हो गया। नवकुमार के मुँह पर पहले का-सा मेघों का अंधेरा छा गया। कहा, “तो तुम रास्ता छोड़ दो।”

कापालिक ने कहा, “रास्ता छोड़ रहा हूँ, लेकिन तुमसे मेरी कुछ बात है—पहले सुन लो।”

नवकुमार ने कहा, “तुम्हारे साथ मेरी और कौन सी बात ? क्या तुम फिर मेरे प्राणनाश के लिए आये हो ? प्राण लो, मैं अब कोई रुकावट नहीं डालूँगा। अभी तुम प्रतीक्षा करो, मैं आता हूँ। क्यों मैंने देवतुष्टि के लिए शरीर नहीं दिया ? अब उसका फलभोग किया। जिसने मुझे बचाया था, उसी ने मुझे मारा। कापालिक ! मुझपर अब अविश्वास न करना। मैं अभी आकर तुम्हें आत्मसमर्पण करूँगा।”

कापालिक ने कहा, “मैं तुम्हारी जान लेने नहीं आया। भवानी की इच्छा ऐसी नहीं। मैं जो कुछ करने के लिए आया हूँ, वह तुमसे अनुमोदित होगा। मकान के भीतर चलो, मैं जो कुछ कहता हूँ, वह सुनो।”

नवकुमार ने कहा, “अभी नहीं। दूसरे समय वह सुनूँगा। तब अभी प्रतीक्षा करो। मुझे खाम ज़रूरत है। पूरी करके आता हूँ।”

कापालिक ने कहा, “वत्स ! मैं सब कुछ जानता हूँ। तब उस पापिनी के पीछे लगोगे। वह जहाँ जायगी मैं जानता हूँ। मैं तुम्हें उस जगह अपने साथ ले जाऊँगा। जो देखना चाहते हो, दिखाऊँगा। अभी मेरी बात सुनो। कोई भय न करो।”

“और अब तुमसे मुझे कोई भय नहीं। आओ।” यह कहकर नवकुमार कापालिक को घर के भीतर ले गये, बैठाला और खुद बैठकर बोलें, “कहो।”

छठा परिच्छेद

फिर बातचीत पर

“तद्गच्छ सिद्ध्ये कुम्भं देवकार्यम् ।”

—कुमारसम्भव ।

आमन ग्रहण करके कापालिक ने दोनों बाहें नवकुमार को दिवाई । नवकुमार ने देखा, दोनों बाहें टूटी हुई हैं ।

पाठक महाशयों को याद होगा, जिस रात को कपाल-कुण्डला के साथ नवकुमार समुद्र के किनारे में भागे थे, उस रात को उनकी खोज करते हुए कापालिक बालू के शिखर से गिर गये थे । गिरते वक्त दोनों हाथों में जमीन पकड़कर देह बचाने की कांशिश की थी, इससे देह की तो रक्षा हुई, मगर दोनों हाथ टूट गये । यह कुल हाल कापालिक ने नवकुमार को सुनाया, “बाँहों में नित्य-क्रिया के निर्वाह में विशेष विघ्न नहीं होता । परन्तु इनमें बल कुछ भी नहीं रह गया । यहाँ तक कि इनमें लकड़ी इकट्ठी करने में भी तकलीफ होती है ।”

फिर कहने लगे, “गिरने के साथ ही मैं समझ गया था कि मेरे दोनों हाथ टूट गये हैं, दूसरे अङ्ग अभ्रम हैं, ऐसा नहीं; मैं गिरने के साथ ही मूर्च्छित हो गया था । पहले बिलकुल बेहोश था । फिर होश हुआ, फिर बेहोश हो गया । कितने दिन मैं इस हालत में रहा, कह नहीं सकता । जान पड़ता है, दो रात एक दिन रहा । सुबह को मुझे पूरी तरह फिर से होश हुआ । उसके कुछ ही पहले मैं एक स्वप्न

सातवाँ परिच्छेद

सौत के सम्भाषण में

*"Be at peace; it is your sister that addresses
You, Requite Lucretia's love."*

—**Lucretia.**

कपाल-कुण्डला घर में निकलकर वन में पैठीं। पहले दूरे ग्रह में गईं। वहाँ ब्राह्मण को देखा। अगर दिन ड़ाता नो देखतीं, उनकी मुग्ध-कान्ति बहुत ही मलिन हो गई है। ब्राह्मणवेशी ने कपाल-कुण्डला से कहा, "यहाँ कपालिक आ सकता है। यहाँ किसी तरह की बातचीत उचित नहीं। चलो, दूम्गी जगह चलो।" वन में एक कम-चौड़ी जगह थी। उसके चारों तरफ पेड़ थे। बीच में साफ। वहाँ से एक रास्ता बाहर को निकल गया है। ब्राह्मणवेशी कपाल-कुण्डला को वहाँ ले गये। दोनों बैठे। ब्राह्मण-वेशी ने कहा, "पहले मैं अपना परिचय दूँ। कहाँ तक मेरी बात विश्वास के योग्य है, यह तुम खुद समझ लोगी। जब तुम अपने पति के साथ हिजली प्रान्त में आ रही थीं तब रास्ते में रात को एक यवनकन्या से मुलाकात हुई थी। तुम्हें क्या वह याद है?"

कपाल-कुण्डला ने कहा, "जिन्होंने मुझे गहने दिये थे?"

ब्राह्मणवेश-धारिणी ने कहा, "मैं वही हूँ।"

कपाल-कुण्डला बहुत ही विस्मित हुई। उनका विस्मय देखकर लुक्कउन्निमा ने कहा, "विस्मय का और भी विषय है—मैं तुम्हारी सौत हूँ।"

तत्रञ्जुव में आकर कपाल-कुण्डला ने कहा, "वह कैसे?"

लुत्कउन्निसा तब शुरू से अपना पश्चिञ्च देने लगीं। विवाह, जाति-नाश, पति का त्याग, डाका, आगगा, जहाँगीर, मेहन्निसा, आगगात्याग, सप्रग्राम में वाम, नवकुमार से मुलाकात, नवकुमार का व्यवहार, पिछले दिन प्रदोष-काल में वेश बदलकर वन में आना, होमकारी से मुलाकात, सब कड़ा। इसी समय कपाल-कुण्डला ने पूछा, "तुमने किस अभिप्राय से हमारे मकान में वेश बदलकर आने की इच्छा की थी?"

लुत्कउन्निसा ने कहा, "तुम्हारे साथ तुम्हारे पति का सदा का बिछोह कर देने के अभिप्राय से।"

कपाल-कुण्डला मोचने लगीं। पूछा, "वह किस तरह मिट्ट करतीं?"

लुत्कउन्निसा—किलहाल तुम्हारे सतीत्व की तरह तुम्हारे पति का संशय पैदा कर देती। परन्तु उस बात की अब आवश्यकता क्या है? वह रास्ता मैंने छोड़ दिया है। इस समय तुम अगर मेरी सलाह के अनुसार काम करो, तो तुम्हीं से मेरी कामना मिट्ट हो जायगी। साथ-साथ तुम्हारा मङ्गल भी होगा।

कपा०—होमकारी के मुख से तुमने किसका नाम सुना था?

लु०—तुम्हारा ही नाम। वे तुम्हारे मङ्गल या अमङ्गल की कामना से हम कर रहे हैं, यह जानने के लिए प्रणाम कर उनके पास बैठी। जब तक उनकी क्रिया पूरी नहीं हुई, तब तक वहाँ बैठी रही। होम हो जाने पर, तुम्हारे नाम के साथ होम करने का अभिप्राय जल से पूछा। कुछ देर तक उनसे बातचीत करके मालूम किया, तुम्हारा अमङ्गल करना ही होम का प्रयोजन है। मेरा भी वही प्रयोजन है। यह भी उनसे मैंने कहा। उसी वजह हम एक दूसरे की मदद के लिए बैठे। वास सलाह के लिए वे मुझे

उस टूटे घर के भीतर ले गये। वहाँ अपने मन की बात खोलकर कही। तुम्हारी मौत ही उन्हें अभीष्ट है। इसमें मेरा कोई इष्ट नहीं। मैंने इस जन्म में पाप ही किये हैं, परन्तु पाप के गन्ते मेरा इतना पतन नहीं हुआ कि मैं निरपराध बालिका को मौत के वाद उतारूँ। मैंने उसमें सम्मति नहीं दी। इसी समय तुम वहाँ पहुँची थीं। मुमकिन, कुछ सुना भी हो।

कपा०—मैंने ऐसी ही बातचीत सुनी थी।

लु०—उस आदमी ने मुझे नाममक नादान मोचकर कुछ उपदेश देना चाहा। अन्त क्या ठहरता है, यह मानस कर तुम्हें उचित संवाद देना चाहती थी, इसलिए तुम्हें वन में, आड़ में, बैठा गई थी।

कपा०—फिर लौटीं क्यों नहीं?

लु०—उन्होंने बहुत सी बातें कहीं। विस्तार से कही बातें सुनने देर हो गई। तब उस आदमी को अच्छी तरह जानती हो। वह कौन है, क्या नाममक में आता है?

कपा०—मुझे पड़ले पालनवाला कापालिक।

लु०—वही है। पड़ले समुद्र के किनारे तुम्हें पाना, वहाँ पालन-पोषण करना, नवकुमार का पहुँचना, उनके साथ तुम्हारा भागना, यह कुल हाल कापालिक ने कहा। तुम लोगों के भागने के बाद जो-जो कुछ हुआ, वह भी कहा। वे सब बातें तुम नहीं जानतीं। तुम्हारी जानकारी के लिए विस्तारपूर्वक कहती हूँ।

यह कहकर लुत्कउन्निमा ने कापालिक का शिखर से गिरना, हाथ टूटना, स्वप्न, सब कहा। स्वप्न सुनकर कपाल-कुण्डला चौककर काँप उठीं। चित्त में विजली की चञ्चलता आ गई। लुत्कउन्निमा कड़ने लगीं, “कापालिक की दृढ़-प्रतिज्ञा है भवानी की आज्ञा का पालन करना। वहाँ बलहीन हैं, इसलिए दृमरे की मदद निहायत

जरूरी है। मुझे ब्राह्मण-तनय विचार कर मदद करने की आशा से कुल वृत्तान्त कहा था। मैंने अब तक इस पापकर्म में मज्जरी नहीं दी। इस वृत्त भाव के चित्त की बात नहीं कह सकती, परन्तु भरोसा है कि कभी भी मज्जरी नहीं दूँगी; वन्कि इस संकल्प का विरोध करूँगी, ऐसा अभिप्राय है। इसी अभिप्राय से मैंने तुम से मुलाकात की। लेकिन इस काम में विष्कुल स्वार्थ छोड़कर मैंने हाथ नहीं लगाया। तुम्हें प्राणों का दान दे रही हूँ, लेकिन तुम भी मेरे लिए कुछ करो।”

कपाल-कुण्डला ने पूछा, “क्या करूँ?”

लु०—मुझे भी प्राणदान दो, पति का त्याग करो।

कपाल-कुण्डला देर तक नहीं बोलीं। बड़ी देर बाद कहा, “पति का त्यागकर कहाँ जाऊँगी?”

लु०—विदेश में—बहुत दूर, तुम्हें प्रामाद दूँगी, धन दूँगी, दासदामियाँ दूँगी, रानी की तरह रहोगी।

कपाल-कुण्डला फिर चिन्ता करने लगी। संसार के सर्वत्र मानस नेत्रों से देखा, कहीं किसी का भी नहीं देखा। अन्तःकरण में दृष्टिपात कर देखा, वहाँ नवकुमार का नहीं देखा, फिर क्यों लुत्फ-उन्निसा के सुख का रास्ता रोके? लुत्फउन्निसा से कहा, “तुमने मेरा उपकार किया है या नहीं। अभी तक यह मेरी समझ में नहीं आ रहा। प्रामाद, धन-सम्पत्ति, दास-दामियों की भी जरूरत नहीं। मैं तुम्हारे सुख का रास्ता क्यों रोऊँगी? तुम्हारी अभिलाषा पूरी हो। कल से इस विघ्नकारिणी का कोई संवाद तुम्हें नहीं मिलेगा। मैं वनचारिणी थी, फिर वनचारिणी हूँगी।”

लुत्फउन्निसा आश्चर्य में आई। इस तरह जल्द स्वीकार कर लेने की आशा उन्होंने नहीं की। मोहित होकर बोलीं, “बहन, तुम्हारी बड़ी उम्र हो। तुमने मुझे प्राण दिये। परन्तु तुम्हें मैं अनाथ

डोकर नहीं जानें दूँगी। कल सुबह तुम्हारे पास एक विश्वास-योग्य चतुर दासी भेजूँगी। उसके साथ जाना। बर्दवान में कोई बहुत बड़ी स्त्री मेरी सखी हैं, वे तुम्हारी कुल जरूरतें पूरी कर देंगी।”

लुत्कउन्निसा और कपाल-कुण्डला इस तरह मन लगाकर बातें कर रही थीं कि सामने के विघ्न की आग एक बार भी आँख नहीं गई। जो जङ्गली रास्ता उनके पाम से बाहर को निकला था, उस रास्ते के किनारे खड़े होकर कापालिक और नवकुमार उनकी तरफ जो कपाल दृष्टिपात कर रहे थे, उसे एक दृष्टा भी नहीं देखा।

नवकुमार और कापालिक इन्हें देख तो रहे थे, लेकिन दुर्भाग्य से उतनी दूर से इनकी बातचीत का कुछ भी हिस्सा उन दोनों ने नहीं सुना। मनुष्य की आँखें और कान अगर दूरगामी होते तो मनुष्य के दुःख का स्नात वटता या बढ़ता, कौन कह सकता है? लोग कहने रहते हैं, संसार की रचना अपूर्व कौशल से पूर्ण है।

नवकुमार ने देखा, कपाल-कुण्डला के बाल खुले हुए हैं। जब कपाल-कुण्डला उनकी नहीं हुई, तभी से वह बाल नहीं बाँधती। फिर देखा कि बालों की वह राशि ब्राह्मणकुमार की पीठ पर पड़ी हुई उनके कन्धों को चूमने वालों से मिल रही है। कपाल-कुण्डला के बाल इतने लम्बे थे और धीमे स्वर से बातचीत करने की गरज से दोनों एक दूसरे के इतने निकट होकर बैठी थीं कि लुत्कउन्निसा की पीठ तक कपाल-कुण्डला के बाल फैल रहे थे। देखकर नवकुमार धीरे से ज़मीन पर बैठ गये।

यह देखकर कमर से बँधा एक नारियल का पात्र निकालकर कापालिक ने कहा, “बन्धु ! बल खा रहे हो। यह महौषध पान करो। यह भवानी का प्रसाद है। पीकर बल पाओगे।”

कापालिक ने नवकुमार के मुँह के पास पात्र रक्खा । अन्य मन से पीते हुए उन्होंने प्रबल प्यास बुझाई । नवकुमार नहीं जानते थे कि यह सुखादु पेय कापालिक की अपने हाथ नैयार की प्रचण्ड तेजस्विनी सुरा थी । पीने के साथ उनमें बल आया ।

इधर लुत्कउन्निमा पहले की तरह मधुर स्वर से कपाल-कुण्डला से कहने लगी, “वहन ! तुमने जो काम किया, उसका बदला चुकाने की मुझमें शक्ति नहीं । फिर भी अगर मैं हमेशा तुम्हें याद रहूँ, वह भी मेरे लिए सुख है । जो गहने तुम्हें दिये थे, सुना है, तुमने दग्ध्र को दे दिये हैं । अब पास कुछ भी नहीं । कल की दूसरी ज़रूरत साँचकर एक अँगूठी ले आई थी । ईश्वर की इच्छा से उस पाप-प्रयोजन की मिट्टि ज़रूरी नहीं मालूम दी । यह अँगूठी तुम रक्खो । इसके बाद अँगूठी देखकर यवनी वहन की याद करना । आज अगर पति पूछें, ‘यह अँगूठी कहाँ मिली ?’ कहना ‘लुत्कउन्निमा ने दी है’ । यह कहकर लुत्कउन्निमा ने अपनी उँगली से लम्बी कीमत से खरीदी हुई एक अँगूठी निकालकर कपाल-कुण्डला के हाथ में डाल दी । नवकुमार ने यह भी देखा । कापालिक उन्हें पकड़े हुए थे, फिर उन्हें काँपते हुए देखकर मदिरा का सेवन कराया । मदिरा नवकुमार के मस्तिष्क में पहुँचकर, उनकी प्रकृति का संहार करने लगी, स्नेह का अङ्कुर तक उन्मूलित करने लगी ।

कपाल-कुण्डला लुत्कउन्निमा से विदा होकर वर की तरफ चली । तब नवकुमार और कापालिक लुत्कउन्निमा की दृष्टि से बाहर रहकर कपाल-कुण्डला का अनुसरण करने लगे ।

आठवाँ परिच्छेद

घर की ओर

"No aspect greets me—no vain shadow thus."

—Wordsworth

कपाल-कुण्डला धीरे-धीरे वर की तरफ चलीं। बहुत धीरे-धीरे बहुत मृदु-मृदु चलीं। इसका कारण, वे बहुत ही गहरी चिन्ता में डूबी हुई जा रही थीं। लुक्क-उन्निमा के संवाद से कपाल-कुण्डला का एक साथ चित्त का भाव बदल गया। वे आत्म-विसर्जन के लिए तैयार हो गईं। आत्म-विसर्जन किस लिए? लुक्क-उन्निमा के लिए? ऐसा नहीं।

अन्तःकरण से जहाँ तक सम्बन्ध है, कपाल-कुण्डला तान्त्रिक की लड़की है। तान्त्रिक जिस तरह काली के प्रसाद की आकांक्षा में दूसरे की जान लेने में संकोच-रहित है, कपाल-कुण्डला भी उसी आकांक्षा में अपने जीवन की बलि देने में वैसी ही। कपाल-कुण्डला कापालिक की तरह अनन्यचित्त होकर शक्तिप्रसादप्रार्थिनी हुई थीं, ऐसा नहीं; किन्तु दिनगत शक्ति की भक्ति सुनने, देखने और साधने में उनके मन में कालिकानुराग विशेष रूप में पैदा हो गया था। भैरवी सृष्टि का शासन करनेवाली और मुक्ति देनेवाली हैं, यह विश्वास खास तौर से उनमें जड़ जमा चुका था। कालिका की पूजा-भूमि मनुष्य के खून से प्लावित होती है, यह उनके दूसरे के दुःख से कातर हुए हृदय को मल नहीं था, नहीं तो दूसरे किसी

काये में भक्ति-प्रदर्शन की त्रुटि नहीं होती थी। अब संसार का शासन करनेवाली, सुख और दुःख का विधान करनेवाली, कंवन्ध देनेवाली उन्हीं भैरवी ने उन्हें जीवन-समर्पण करने की स्वीकृति में आज्ञा दी है। क्यों कपाल-कुण्डला उस आदेश का पालन नहीं करेंगी ?

हम-तुम जान नहीं देना चाहते। अनुभाग में कहते हैं, यह संसार सुखमय है। सुख की आशा से हा लट्टू की तरह संसार में घूम रहे हैं—दुःख की आशा से नहीं। कदाचित् यदि हमारे कर्मों के दोष से वह आशा पूरी न हुई, तो दुःख कहकर ऊँचे स्वर से कलरव करने लगते हैं। इसी से दुःख नियम नहीं, मिथ्यान्त हुआ, नियम का सिर्फ व्यतिक्रम। तुम्हें-हमें सब जगह सुख है। उसी सुख की संसार में हमारी जड़ गड़ी हुई है। हम उसे छोड़ना नहीं चाहते। परन्तु इस संसार के बन्धन की प्रणय प्रधान रस्मी है। कपाल-कुण्डला के वह बन्धन नहीं था—कोई भी बन्धन नहीं था। फिर कपाल-कुण्डला के कौन रख सकता है ?

जिसके बन्धन नहीं, उसी का वेग अप्रतिहत है। पहाड़ की चोटी से झरना उतरने पर कौन उसकी गति को रोक सकता है ? एक दफा हवा बहने पर कौन उसके बहाव को रोक सकता है ? कपाल-कुण्डला का चित्त चञ्चल होने पर कौन उसे स्थिर करेगा ? नया हाथी मतवाला होने पर कौन उसे शांत करेगा ?

कपाल-कुण्डला ने अपने चित्त से वृद्धा, “क्यों इस शरीर को जगदीश्वर के चरणों में अर्पित नहीं करूँगी ? पञ्चभूत लेकर क्या होगा ?” प्रश्न कर रही थीं, पर कोई निश्चित उत्तर नहीं दे पा रही थीं। संसार में दूसरा कोई बन्धन न रहने पर भी पञ्चभूतों का एक बन्धन है।

कपाल-कुण्डला मग भुकाये हुए चलती गई। जब मनुष्य का हृदय किसी उत्कट भाव में थिरता है, चित्ता की एकाग्रता से बाह्य-मृष्टि की तरफ निगाह नहीं रहती, तब अनैसर्गिक पदार्थ भी प्रत्यक्ष हुआ मानूस देता है। कपाल-कुण्डला की वही अवस्था हुई थी।

जैसे ऊपर से यह शब्द उनके कान में गया, “वत्से ! मैं गस्ता दिखा रही हूँ।” कपाल-कुण्डला ने चकित हुई जैमी निगाह ऊपर उठाई। देखा, जैसे आकाश-मण्डल में नये बादलों को निन्दित करनेवाली मूर्ति है। गल में पड़ी नग-कपाल-माला से रुधिर निकल रहा है; कटिमण्डल को वेगकर नाकर हिल रहे हैं; बाँये हाथ में नग-कपाल है, अङ्गों में रुधिर की धारा; ललाट में, विषमोज्ज्वल ज्वालावाली आँखों के किनारे बालचन्द्र शोभित है। जैसे भैरवी दाहना हाथ उठाकर कपाल-कुण्डला को बुला रही है।

कपाल-कुण्डला ऊर्ध्वमुखी देकर चली। वह नई कादंबिनी जैमी मूर्ति आकाशमार्ग में उनके आगे आगे चली। कभी कपाल-मालिनी का अवयव बादलों में छिप जाता है, कभी आँखों में स्पष्ट रूप से खुल जाता है। कपाल-कुण्डला उनकी ओर देखती हुई चली।

नवकुमार या कापालिक ने यह कुछ नहीं देखा। नवकुमार का हृदय मुरा के गरल में जल रहा था। कपाल-कुण्डला के धीरे पदक्षेप में असहिष्णु होकर साथी से उन्होंने कहा, “कापालिक।”

कापालिक ने कहा, “क्या ?”

“पानीयं देहि मे।”

कापालिक ने फिर उन्हें शाश्वत पिलाई।

नवकुमार ने कहा, “अब देर क्या है ?”

कापालिक ने जवाब दिया, “अब देर क्या है ?”

नवकुमार ने भीमनाद से पुकारा, “कपाल-कुण्डल !”

कपाल-कुण्डला सुनकर चौंक उठीं। इधर कोई उन्हें कपाल-कुण्डला कहकर नहीं पुकारता था। वे मुँह फेरकर ग्वड़ी हो गई। नवकुमार और कापालिक उनके सामने आये। पहलं कपाल-कुण्डला उन्हें पहचान नहीं सकीं। कहा, “तुम लोग कौन ? यमदूत हो ?”

दूसरे ही क्षण पहचान कर कहा, “नहीं, नहीं. पितः, तुम क्या मुझे बलि देने के लिए आये हो ?”

नवकुमार ने दृढ़ मुट्ठी से कपाल-कुण्डला का हाथ पकड़ा। करुणा से आर्द्र हो मधुर स्वर में कापालिक ने कहा, “वत्से ! हमारे साथ आओ।” यह कहकर कापालिक श्मशान की तरफ रास्ता दिखाकर चले।

कपाल-कुण्डला ने आकाश में दृष्टि डाली, जहाँ गगनविहारिणी भयंकारी को देखा था, उसी तरफ देखा। देखा, गण-गङ्गिणी खल-खल हँस रही हैं; एक दीर्घ त्रिशूल हाथ में लिये कापालिक के चल गस्ते की तरफ संकेत कर रही हैं। कपाल-कुण्डला, अदृष्ट से जैसे विमूढ़ हो गई हो इस तरह, बिना कुछ बोले, कापालिक के पीछे-पीछे चलीं। नवकुमार पहले की तरह दृढ़ मुट्ठी में उनका हाथ पकड़े हुए चले।

नवाँ परिच्छेद

प्रेत-भूमि में

“वपुषा करुणोज्ज्वलेन सा निपतन्ती पतिमप्यपातयत् ।
ननु तैलनिपेकबिन्दुना सह दीपार्च्चिरूपैति मेदिनीम् ॥”

—रघुवंश ।

चाँद अस्त हो गया । विश्वमण्डल अँधेरे से पूर्ण हो गया । कापालिक ने जहाँ अपनी पूजा की जगह बनाई थी, वहाँ कपाल-कुण्डला को ले गये । वह गङ्गा के किनारे एक बृहत् सैकत भूमि है । उसी के सामने एक और बड़ा दूसरा सिकतामय स्थान है । उसी सैकत में श्मशान-भूमि है । दोनों सैकतों में ज्वार के समय कुछ-कुछ पानी रहता है, भाटा के समय पानी नहीं रहता, इस समय पानी नहीं था । श्मशान-भूमि का जो मुँह गङ्गा के सामने है, वह बहुत ऊँचा है; कोई पानी में उतरना चाहे तो एक बार ही ऊँचे से अगाध पानी में गिरना पड़ता है । इस पर फिर अविरत वायु से ताड़ित तरङ्गों के थपेड़ों से रेंती का तल भाग कट गया था । कभी-कभी कगारे से मिट्टी के खण्ड के खण्ड टूटकर अगाध पानी में गिरते थे । पूजा की जगह दिया नहीं, लकड़ी का एक कुन्दा जल रहा था, उसके प्रकाश में अस्पष्ट दीखती हुई श्मशान-भूमि और भी भीषण दिख रही थी, पास पूजा, होम, बलि आदि का कुल आया-जन था । तरङ्गिणी का विशाल हृदय अँधेरे में फैला हुआ है । चेत की हवा अप्रतिहत वेग से गङ्गा के हृदय पर बह रही थी; इस कारण तरङ्गों के थपेड़ों से उठा कलकल-रव आकाश को

व्याप्त कर रहा था। श्मशान-भूमि में मुर्दा खानेवाले पशु कभी-कभी कर्कश कण्ठ से बोल रहे थे।

नवकुमार और कपाल-कुण्डला को यथाम्थान कुशासन पर बैठाकर कापालिक ने तान्त्रिक विधान के अनुसार पूजा का समारम्भ किया। यथासमय नवकुमार को आदेश दिया कि कपाल-कुण्डला को नहला लाओ। नवकुमार कपाल-कुण्डला का हाथ पकड़ कर श्मशान-भूमि के ऊपर से नहलाने के लिए ले चलें। उनके पैरों में हाड़ गड़ने लगे। नवकुमार के पैर की चोट से श्मशान का एक जल भरा कलश फूट गया। उसके पास ही एक लाश पड़ी थी। अभागों की किसी ने क्रिया भी नहीं की। उससे दोनों के पैर छू गये। कपाल-कुण्डला उससे घृम कर गई, नवकुमार उसे पैरों में दलमस कर गये। चारों तरफ लाश खानेवाले जन्तु घेरे हुए फिर रहे थे; दानुष्यों के आगमन से उच्च स्वर से बोलने लगे, कोई काटने दौड़ा, कोई पद-शब्द करता हुआ चला गया। कपाल-कुण्डला ने देखा, नवकुमार का हाथ काँप रहा है; कपाल-कुण्डला स्वयं निर्भीक, बेधड़क हैं।

कपाल-कुण्डला ने पूछा, “स्वामिन् ! डर रहे हो ?”

नवकुमार का मदिग का मोह क्रमशः कमजोर होता आ रहा है। बड़े ही गम्भीर स्वर से नवकुमार ने जवाब दिया, “भय से, मृण्मयि ? सो नहीं।”

कपाल-कुण्डला ने पूछा, “तो काँप क्यों रहे हो ?”

यह प्रश्न कपाल-कुण्डला ने जिस स्वर से किया, वह केवल स्त्री-कण्ठ से ही सम्भव है। जब स्त्री दूसरे के दुःख में गल जाती है, केवल तभी स्त्री-कण्ठ में वह स्वर सम्भव है। कौन जानता था कि आसन्नमुहूर्त में श्मशान में आने पर कपाल-कुण्डला के कण्ठ से यह स्वर निकलेगा ?

नवकुमार ने कहा, “भय से नहीं, रंग नहीं सकता, इसी क्रोध से काँप रहा हूँ।”

कपाल-कुण्डला ने पूछा, “गोओगे क्यों?”

फिर वही कण्ठ।

नवकुमार ने कहा, “रंगऊँगा क्यों? तुम क्या समझोगी मृगमयि! तुम तो कभी रूप देखकर पागल नहीं हुई—कहते-कहते नवकुमार का गला दर्द से भर आने लगा। “तुम तो कभी अपना हृत्पिण्ड आप ही काटकर श्मशान में फेंकने आई नहीं।” यह कहकर एकाएक नवकुमार फूट-फूटकर रंगे हुए कपाल-कुण्डला के पैरों पर पछाड़ खाकर गिर गया।

“मृगमयि, कपाल-कुण्डल, मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हारे पैरों पड़ रहा हूँ—एक दफा कहो कि तुम अविश्वामिनी नहीं—एक दफा कहो, मैं तुम्हें हृदय पर उठाकर घर ले जाऊँ।”

कपाल-कुण्डला ने हाथ पकड़ कर नवकुमार को उठाया—मृदु स्वर से कहा, “तुमने तो पूछा नहीं?”

जब यह बात हुई तब दोनों पानी के किनारे आकर खड़े हुए थे; कपाल-कुण्डला आगे थीं, नदी की तरफ पीठ किये हुए; उनके पीछे एक क्रदम बाद ही पानी था। अब ज्वार चढ़ना शुरू हो गया था, कपाल-कुण्डला एक टीले पर खड़ी थीं। उन्होंने जवाब दिया—“तुमने तो पूछा नहीं!”

नवकुमार ने पागल की तरह कहा, “होश खा चुका हूँ, क्या पूछूँ—कहो, मृगमयि कहो—कहो—कहो—मेरी रक्षा करो। घर चलो!”

कपाल-कुण्डला ने कहा, “जो कुछ पूछो, कहूँगी। आज जिमे देखा है, वह पश्चावती है। मैं अविश्वामिनी नहीं। यह सही-सही बात कही। परन्तु अब मैं घर नहीं जाऊँगी। भवानी के

चरणों में देह छोड़ने आई हूँ—जरूर ऐसा करूँगी। स्वामिन ! घर लौट जाओ। मैं मरूँगी। मेरे लिए राखी नहीं।”

“नहीं—मृगमयि !—नहीं—” इस तरह ऊँचे स्वर से कहते हुए नवकुमार ने कपाल-कुराडला को हृदय में धारण करने के लिए बाँहें फैलाई, परन्तु फिर कपाल-कुराडला को नहीं पाया। चैत की हवा से उठी एक विशाल तरङ्ग आकर किनारे जहाँ कपाल-कुराडला गड़ी थी, उसके नीचे टकराई, साथ ही वह मृत्तिकाग्वण्ड कपाल-कुराडला के साथ बोग रव से नदी-प्रवाह में टूटकर गिर गया।

नवकुमार ने तट के टूटने का शब्द सुना, कपाल-कुराडला अन्तर्हित हो गई देखा। साथ ही उनके पीछे पानी में कूद। नवकुमार तैरने में ऐसे कमजोर नहीं थे। कुछ देर तक तैरते हुए कपाल-कुराडला को खोजते रहे। लेकिन उन्हें नहीं पाया, वे भी किनारे नहीं चढ़े।

उस अनन्त गङ्गाप्रवाह में वसन्तवायु से क्षिप्र वीचिमाला में आन्दोलित होते-होते कपाल-कुराडला और नवकुमार कहाँ गये ?



